होकर शासन करेगा। पोलिटिकल सेक्रेटरी का भारत और भी ज़ोर से रक्त डालेगी। राजा लोग अपने [illegible] स्वेच्छाचारी की रक्षा के लिए ब्रिटिश भारत के स्वतन्त्र वायुमण्डल से भागना चाहते हैं। पर इसका परिणाम उनके लिए घातक होगा। ब्रिटिश भारत का लोकमत बड़ी सरगर्मी के साथ अंग्रेज़ों की देसी नीति की आलोचना करता है – इससे सरकार खुल्लमखुल्ला देसी मामलों में हस्तक्षेप करते नहीं हैं – पर इस भय के दूर होते ही उनकी स्वेच्छाचारिता की कोई सीमा नहीं रहेगी। सर शिवस्वामी ऐय्यर के शब्दों में '[illegible] की ओर से नौकरशाही की अदृश्य शक्ति बढ़ती जा [illegible]।'

(२) देसी राजाओं की दूसरी माँग यह थी कि ब्रिटिश सरकार और देसी रियासतों के सम्बन्ध निश्चित हो जाने चाहिए। वे कहते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा की गई सन्धियों समझौतों और शर्तों को समय समय [illegible] रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता है। सरकार [illegible] अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप करती है। राजाओं को लाञ्छित किया जाता है। [illegible]

बातों का निर्णय [illegible] पर बटलर कमेटी ने [illegible] ठुकरा दिया। उसने [illegible] शब्दों में [illegible] कहा है कि 'प्रभु [illegible] ही रहेगा।' 'प्रभुशक्ति और और केवल प्रभुशक्ति [illegible] रियासतों और [illegible] सम्बन्ध अच्छे रहे हैं। भावी नीति में [illegible] रियासतों को प्रभु[illegible] निर्भर रहना पड़ेगा। [illegible] ने ही रियासतों के [illegible] सार्वभौम के भय को दूर [illegible] है। प्रभुशक्ति को [illegible] के अनुसार उन सब शक्तियों के प्रयोग करने का [illegible] है जो उस अवस्था के [illegible] हैं। इस बात के [illegible] निज़ाम को [illegible] लार्ड रीडिंग का पत्र भी उद्धृत किया है। उसमें [illegible] "कि केवल सन्धियों [illegible] शर्तों तथा [illegible] द्वारा प्रभुशक्ति [illegible] सम्पूर्ण भारत के हितों [illegible] ध्यान दे। [illegible] के हितों की रक्षा करना [illegible] अधिक [illegible] हैं। यदि अन्दरूनी मामले में गड़बड़ हुई तो वह शक्ति दस्तन्दाज़ी [illegible] कुल्ल स्पष्ट है कि [illegible]

के अधिकारों की कोई सीमा नहीं है — वह जो कुछ चाहे कर सकती है। वह सन्धियों और सनदों को रद्दी की टोकरी में फेंक सकती है। 'बलवान का हेंगा सिर पर' वाली कहावत चरितार्थ होती है। वास्तव में प्रभुशक्ति का उदय राजनीतिक दांव पेंचों का परिणाम है जो देशी राजा और अधिक पैर पसारने के लिए जोर लगा रहे थे — उन्हें बता दिया गया कि उन्हें तो "आन्तरिक स्वामित्व" (Internal sovereignty) भी प्राप्त नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजाओं की मुख्य मांगों को ठुकरा दिया गया है — यदि स्वीकृत भी किया तो ब्रिटिश शासकों के स्वार्थ साधन के लिए। अब हम कमेटी की अन्य सिफारिशों पर विचार करते हैं।

(३) कमेटी ने यद्यपि प्रभुशक्ति का नाराज़ कर दिया है पर साथ ही उन्हें धोखे से पुरस्कार भी दिया है। रिपोर्ट में लिखा है कि यदि भारत में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन स्थापित हो गया तो देशी राजाओं की सम्मति के बिना प्रभुशक्ति तथा राजाओं के सम्बन्ध नई सरकार के साथ नहीं किए जायेंगे। यहां पर राजाओं की सम्मति को बहुत मान दिया गया है। ब्रिटिश जाति बड़ी स्वार्थी है — वह बिना किसी स्वार्थ के किसी का आदर करना नहीं जानती। इसमें भी एक चाल है। इससे ब्रिटिश सरकार भारत को सदा के लिए दो भागों में विभक्त कर देना चाहती है। नेहरू-रिपोर्ट के निर्माताओं का ध्यान इस महदापत्ति की ओर गया था और उन्होंने राजाओं को सावधान भी किया था। हम स्वयं 'आत्म-निर्णय' के सिद्धान्त के कट्टर पक्षपाती हैं — इसलिए इस पर आपत्ति करना अनुचित होता। पर प्रश्न यह है कि क्या जो आशंका प्रकट की गई है — [illegible] सरकार उसका प्रतिवाद क्यों नहीं करती। क्या ब्रिटिश सरकार राजाओं को भारत राष्ट्र से मिलने का अधिकार भी [illegible] को तय्यार है। जहां एक स्थान पर राजाओं को यह अधिकार दिया गया है कि [illegible] सम्मति के बिना उत्तरदायित्व शासन सम्पन्न भारत-सरकार से सम्बन्ध नहीं जोड़े जावेंगे, वहां इस बात का स्पष्ट प्रतिपादन नहीं किया कि यदि कुछ, सब या केवल एक ही देशी रियासत नवीन सरकार

से सम्बन्ध स्थापित करना चाहे तो कर सकती है या नहीं। सरकार ने ही मुसलमानों को बहका कर भारत में पृथक् निर्वाचन का समावेश किया और प्रतिज्ञा की कि जब तुम लोग इसे हटाने के लिए कहोगे तो हटा कर दिया जावेगा। आज राष्ट्रीय मुसलमान पृथक् निर्वाचन के कट्टर विरोधी हैं पर सरकार को इस से क्या गरज। वह तो मीया-मिठुओं के नाम पर इस की आवश्यकता का प्रतिपादन करती रहेगी। इसी तरह क्या ब्रिटिश सरकार देशी रियासतों को सदा के लिए अलग कर देना चाहती है? भारत की स्थिति ही ऐसी है कि उसके आर्थिक, नैतिक, व्यावसायिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक हितों की रक्षा के लिए एक ही सरकार की आवश्यकता है। ब्रिटेन भारत को दो भागों में विभक्त कर देना चाहता है। उसने चीन की दीवार खड़ी कर दी। इससे महाराजा पटियाला का 'भारत-संघ' का स्वप्न कदापि पूर्ण नहीं हो सकता। भारत के औपनिवेशिक स्वराज्य तथा पूर्ण स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए जहाँ यह घातक हुआ है वहाँ देशी रियासतों की भी महान हानि हुई है। यदि राजा लोग वास्तव में 'भारत-संघ' के पक्षपाती हैं तो उन्हें मानना पड़ेगा कि यहाँ भी राजाओं के हितों की उपेक्षा की गई है।

(६) ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों, व देशी रियासतों के पारस्परिक झगड़े का निपटारा करने के लिए एक कमेटी की सिफारिश की गई है। यदि वह अपने कार्य में असफल हो तो वायसराय एक और कमेटी का निर्माण करे। इस का प्रधान कम से कम हाईकोर्ट का जज अवश्य हो। अन्तिम निर्णय भारतसचिव और वायसराय के हाथ में होगा रियासतों के नहीं।

(७) देशी राजाओं को अपने यहाँ आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के विद्यार्थियों को नौकर रखने का आदेश किया है। इस सिफारिश को हम आदेश ही समझते हैं। उस विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए यह प्रसन्नता की बात है क्योंकि उनके लिए नौकरी का एक स्कूल [illegible] पर आश्चर्य तो इस बात की है कि [illegible] ये सज्जन देशी राजाओं का भला करेंगे और ब्रिटिश सरकार के हित न [illegible]।

(ख) रियासतों के आर्थिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए एक और कमेटी की सिफारिश की गई है। यह इस बात पर विचार करेगी कि साम्राज्य रक्षा के लिए कौनसी रियासत कितनी सहायता करे। इसी प्रकार कर चुंगी, महसूल आदि का भी निर्णय करे। साथ ही यह भी सिफारिश की गई है कि जो राजा देशी राजपरिषद् (Chamber of princes) के सभासद हैं उनके वैयक्तिक माल पर कर न लगाया जाय। इसका परिणाम यह होगा कि जो इस दर्जे के राजा इस संकीर्ण तथा अनुदार परिषद् में नहीं हैं वे भी इस यत्किंचित लाभ के उपभोग के लिए इसके सदस्य बन जावेंगे। इससे जहां ब्रिटिश सरकार को सब राजाओं की सम्मिलित सम्मति के नाम से सब कुछ करने का अधिकार प्राप्त होगा वहां राजाओं की फिजूलखर्ची से ब्रिटेन के पूंजीपतियों के कारखाने चलते रहेंगे - उनके स्थिर उद्योगों की संख्या बढ़ जायगी एवं बिक्री भी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बटलर कमेटी की रिपोर्ट से, न भारत को लाभ है, न देसी राजाओं को और न उनकी प्रजाओं को। हां विदेशी शासक अपने स्वार्थ साधन में अवश्य सफल हुए हैं। उन्होंने राजाओं की अनुदार मांगों को स्वीकृत कर कुछ समय के लिए ब्रिटिश साम्राज्य की आयु बढ़ा दी है।

राजाओं के कर्तव्य —

अब राजाओं का कर्तव्य स्पष्ट हो रहा है। उन्हें समझ लेना चाहिए कि देसी रियासतों की प्रजा की उपेक्षा करके वे [illegible] भी प्राप्त नहीं कर सकते - [illegible] साधन के द्वारा बनकर संसार में हास्यास्पद बन सकते हैं। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि प्रजातन्त्र की लहरें प्रबलता के साथ अपना मार्ग स्थापित करती जा रही हैं। समानता स्वतन्त्रता और आत्मनिर्णय के सिद्धान्त संसार का संचालन कर रहे हैं। इसीलिए उनका भला इसी में है कि वे रियासतों की प्रजा को अपने साथ करें और विदेशी बन्धनों से मुक्त हों। यह तभी हो सकता है जब कि वे इस पथ का अनुसरण करेंगे —

(i) राजा के वैयक्तिक व्यय को सामान्य मालगुजारी से पृथक् करना

(ii) आर्थिक व्यवस्था--निर्धारित नियमों के अनुसार मालगुजारी वसूल करना--अन्धाधुन्ध नहीं। आय से अधिक खर्च न करना.

(iii) वार्षिक बजट और उसका निरीक्षण

(iv) न्यायविभाग को शासन-विभाग से स्वतन्त्र करना, कानून का राज्य स्थापित करना किसी व्यक्ति का कानून से ऊपर न होना.

(v) नागरिकता के अधिकार-स्वतन्त्र भाषण, लेखन आदि.

(vi) उत्तरदायित्व शासन स्थापित करना.

यदि राजा लोग इधर ध्यान नहीं देंगे, स्वेच्छाचारी बने रहेंगे, प्रजा को सतावेंगे तो ब्रिटिश भारत की सहानुभूति से वञ्चित हो जावेंगे। उनके विरुद्ध लोग जहाद बोल देंगे। राजाओं को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि अब "राजाओं के दैवीय अधिकार" (Divine right) का जमाना नहीं रहा, यह जमाना तो है स्वतन्त्रता, समानता, आत्मनिर्णय और भ्रातृभाव का। उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि प्रजातन्त्र की वे लहरें--जिन्होंने हैप्सबर्ग और होहेन्जोलर्न, जार और सुलतान के घरानों को नेस्तनाबूद कर दिया है--इन छोटे मोटे राजाओं को भी जनता के गर्भ में विलीन कर देगी। राजाओं की अग्नि-परीक्षा का समय है, उसमें पास या फेल होना उन्हीं पर अवलम्बित है।

[illegible]

भारत में विदेशी वस्त्र बहिष्कार का आन्दोलन प्रारम्भ हुए बहुत समय व्यतीत नहीं हुआ। पर इसका इतना प्रभाव हुआ है कि अप्रैल मास में ही लंकाशायर की २७ मिलें बन्द हो गई हैं। इस समय कुल ७ रात्रि [illegible] बन्द हैं। इसका कारण है सरकार का व्यवहार। प्रत्येक देश में सरकार मूर्खता और उतावला पन राष्ट्रीय आन्दोलनों को प्रगति देता है। यदि सरकार महात्मा गान्धी को कैद न करती, पुलिस आन्दोलन को कुचलने का निश्चय न करती, किसान एवं मजदूर नेताओं की गिरफ्तारियां न करती, तो यह आन्दोलन इतना अधिक कभी

न बचता। ब्रिटेन का व्यापार दिन प्रतिदिन घटता जा रहा है। १९१३ में ब्रिटेन का जितना कपड़ों का व्यापार था १९२८ में उसका ६४% कम हो गया है। इस क्षति का कारण चीन और हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय प्रगति है। भारत में १९१३ में इंग्लैण्ड से ३,०५,७३,४१,००० गज कपड़ा आता था पर १९२८ में उसका आधा — १,५८६,९६,२८०, गज कपड़ा — ही आया। इसी प्रकार चीन ने १९१३ में इंग्लैण्ड से ७१,६५,५३,००० गज कपड़ा मंगाता था पर १९२८ में उसने केवल १७,३०,५८,००० गज कपड़ा मंगाया। भारत और चीन की तरह ब्रिटेन का व्यापार अन्य एशियाई देशों से भी होता था। इन लोगों ने ब्रिटेन के व्यापार से मुंह मोड़ लिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि जहां १९१३ में सम्पूर्ण एशियाई देशों में ६,३९,२३,२२,००० गज कपड़ा इंग्लैण्ड से गया था वहां १९२८ में केवल मात्र २,०९,२२,३५,००० गज कपड़ा ही गया है — अर्थात एशियाई देशों के साथ ब्रिटेन का आधा व्यापार मारा गया।

इस का उत्तरदाता स्वयं ब्रिटेन ही है। यदि इस समय ब्रिटिश पूंजीपतियों की जेबें खाली हो रही हैं, मिलें बन्द हो रही हैं, तो इस का किसी पर दोष मढ़ा नहीं जा सकता। ब्रिटिश पूंजीपतियों की करतूतियां और उनके इशारे पर चलने वाली साम्राज्यवादी सरकार ही इस व्यापार-क्षति की उत्तरदाता है। ग्राहकों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि उनसे अच्छी तरह बर्ताव किया जाय पर वह तो उन्हें मारता है, आंखें दिखाता है और जबर्दस्ती भी करता है। वह भारत में उसकी इच्छा के विरुद्ध गोरे कमीशन को भेजता है। व्यवस्थापकों के विरोध और प्रतिवेदन के मत करने पर भी काले कानून जारी करता है। चीन में दखल करना चाहता है। अफगानिस्तान में उत्पात करा रहा है। इसका परिणाम आज वह भुगत रहा है। उसने जो बोया था उसे ही वह काट रहा है। अपना कर्मफल भोग रहा है। पीड़ित राष्ट्रों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ पर कुठाराघात किया है। ब्रिटिश साम्राज्य का आधार आर्थिक-व्यवस्था है। बहिष्कार उस की जड़ खोदता है। आर्थिक साम्राज्यवाद का उपचार है — आर्थिक बहिष्कार।

देसी राजनीति

प्रेमचन्द —

कलकत्ता में यूरोपियन एसोसिएशन के सम्मुख दिए गए लार्ड इरविन के भाषण के पढ़ने से सर्वसाधारण में यह विश्वास हो गया था कि अब सरकार दमन-चक्र का प्रवर्तन करेगी। यह आशंका दिनोंदिन बढ़ती गई। कलकत्ता कांग्रेस के बाद पूर्ण स्वाधीनता के पुजारी श्री साम्बमूर्ति गिरफ्तार कर लिए गए। महात्मा गान्धी पर पुलिस ने वार किया। इसके बाद पंजाब में तलाशियां आरम्भ हुईं। सारे देश में तलाशियों और गिरफ्तारियों का तांता बंध गया। मजदूर और किसान नेता नौकरशाही के कारावास के अतिथि बने। युवक आन्दोलन को कुचला जाने लगा। इसको नेस्तनाबूद करने का सरकार ने दृढ़ निश्चय कर लिया। वह नवीन सन्तति की भावनाओं, विचारों और विश्वासों को कुचल देना चाहती थी। सरकार को शायद इस बात का ख्याल न था कि इससे युवकों का आन्दोलन शान्त नहीं होगा। सरकार के सद्व्यवहार का परिणाम यह हुआ कि शान्तिप्रिय भारत-वासियों को भी बम का सहारा लेना पड़ा। एसेम्बली में युवक भारत के दो प्रतिनिधियों ने सत्यनिष्ठा का अनुष्ठान कर दो आहुतियां दीं। नेता लोग स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर चुके थे कि यदि नवयुवक हमारे हाथ से निकल जाएंगे तो सरकार इस की जिम्मेवार होगी। सरकार के कारनामों को युवक भारत की आत्मा और अधिक सहन न कर सकी। उनका खून खौल रहा है। उनमें नवीन भावनाएं, नई उमंगें हैं, नवीन उत्साह और नवीन उल्लास है। देशप्रेम के रंग में रंगे नवयुवक किसी बाधा को मान नहीं सकते। 'कार्य वा साधयेयम् देहं वा पातयेयम्' यही उनका ध्येय है। उनका एक ही ध्येय है। वह है - नौकरशाही का ध्वंस - चाहे वह शान्ति से हो या क्रान्ति से। उनकी आस्था हिंसा और अहिंसा के बन्धनों को पार कर चुकी है। मतवाले सैनिक,

देशभक्ति के नशे में चूर होकर सरकार से युद्ध करने को तय्यार खड़े हैं। नौकरशाही को समझ लेना चाहिए कि देश के किसान, मजदूर और युवकगण आज जागृत हो उठे हैं। वे और अधिक अत्याचार सह नहीं सकते। सरकार जिस मार्ग का अनुसरण करना चाहे करे — नवीन भारत अपना कार्य समाप्त करके ही विश्राम लेगी। वे लोग लोहे से लोहा बजाने को भी तय्यार हैं। क्या सरकार अब भी भारत में कानून के नाम पर दमन चक्र चलाने के लिए तय्यार है?

भारत और दक्षिण अफ्रीका

प्रवासी भारतीयों का प्रश्न सदा ही एक समस्या बना रहा है। जो देश स्वयं स्वतन्त्र नहीं, जिसके मान, भाषा, विचार और शिक्षा नष्ट किए जा चुके हैं, जो स्वयं पददलित है — उस देश के नागरिकों का विदेश में रहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अफ्रीका में इस समस्या ने विकट रूप धारण किया हुआ है। अफ्रीका को भारतीयों ने अपना पसीना बहाकर आबाद किया — पर आज उन्हें वहां से दुत्कारा जा रहा है। यह वहां का न्याय है।

पूर्वी अफ्रीका में तो यह प्रश्न और भी अधिक विकट हो गया। हम इसी पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

केनिया में कुछ गोरे वाशिंदे बसे हुए हैं। ये लोग कुल आबादी के १% प्रतिशतक से भी कम हैं। ये सम्पूर्ण पूर्वी अफ्रीका पर अपना प्रभुत्व उत्पन्न करना चाहते हैं। ये लोग सम्पूर्ण पूर्वी अफ्रीका को संघ बना कर अपना 'उत्तरदायित्व पूर्ण शासन' करना चाहते हैं। इसका अभिप्राय यह होगा कि १२००० गोरे २५ लाख अफ्रीकनों पर आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभुत्व करेंगे। इस समय — जब कि शासनसूत्र ब्रिटिश पार्लमेंट के हाथ में है, तब भी — गोरे लोग अफ्रीकनों के हितों का बलिदान कर अपने स्वार्थ सिद्ध करते हैं, पर जिस समय वे ही सर्वेसर्वा हो जाएंगे तब तो अफ्रीकनों के दुःखों का कहना ही क्या। इसी प्रकार संघ का परिणाम यह होगा कि शासन में केनिया का प्रभुत्व हो जावेगा। जहां कहीं वर्णभेद का प्रश्न उठा है — भारतीय, अफ्रीकन एवं यूरोपियन मेल से रहते हैं — वहां भी यह प्रश्न तीव्र रूप धारण करेगा। इस समय किसी प्रकार गैर-यूरोपियनों के हितों की रक्षा भी सम्भव है।

केनिया के गोरों का प्रबल दल सदा ही अपनी मांगों को तीव्र रूप में पेश करता रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य को धमकी देता है। पर मैण्डेटो के हितों की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश शासक किसी प्रकार उनकी मांग को टालती रही है। उन्हें संतुष्ट करने के लिए वह एक के बाद अनेक कमीशन नियुक्त कर चुकी है। १९२३ की बाल्डविन की प्रथम सरकार ने स्पष्ट रूप से घोषणा करदी थी कि केनिया को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन — थोड़े से गोरों का ३० लाख अफ्रीकनों पर अत्याचार तथा अनुत्तरदायी शासन — देने का समय अभी बहुत दूर है, जहां कहीं यूरोपियनों और अफ्रीकनों के हितों का झगड़ा [illegible] — वहां वह अफ्रीकनों के हितों पर ध्यान देगी। पर इस घोषणा के बाद ही ऑर्म्सबी-गोर कमीशन की नियुक्ति की गई। उसने भी इस घोषणा का समर्थन किया। इसके बाद हिल्टन-यंग कमीशन की नियुक्ति की, पर उसने भी उसी तथ्य का प्रतिपादन किया। [illegible] यह ठीक है कि इस रिपोर्ट ने यूरोपियनों को अनेक सुविधाएं प्राप्त हुई हैं — केनिया की व्यवस्थापक सभा में गोरों का बहुमत है। गोरों की इच्छा पर सिर्फ [illegible] निर्वाचित छोड़ दिया गया है। जमीन खरीदने तथा ऊँची जमीनों पर बसने का अधिकार गोरों के सिवाय और किसी को प्राप्त नहीं है।

अब फिर केनिया के गोरे धमकी दे रहे हैं। उनकी मांग को पूरा करने के लिए सर सेमुअल विल्सन की नियुक्ति की गई थी। हिल्टन-यंग कमीशन ने एक दूसरे कमीशन की नियुक्ति की सिफारिश की थी — इस साम्राज्यवादी सेमुअल की नहीं। आप केनिया जावेंगे और वहां की जनता — गोरों — से मिलेंगे। शायद वे अपनी अलग रिपोर्ट भी [illegible] करें। उसमें इन [illegible] भूत प्रश्नों — केनिया को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन पर फिर से विचार किया जाय। ऐसे समय भारतीय हितों की रक्षा के लिए आवश्यक है कि कोई समझदार एवं प्रभावशाली [illegible] इस उत्तरदायित्व को ले। हर्ष का विषय है कि, [illegible] निवास शास्त्री भारतीयों की मांगों को सेमुअल के सामने रखने के लिए पूर्वी अफ्रीका की ओर प्रयाण कर चुके हैं। भारतीयों की शुभकामनाएं श्री शास्त्री के साथ हैं। हम उनकी सफलता चाहते हैं।

भारत और ब्रिटेश निर्वाचन

इस समय ब्रिटेन मे निर्वाचन की धूम है। आशा लगाई जाती है कि मजदूर दल विजयी होगा। इस सम्भावना को सम्मुख रखकर ही [illegible] लीडर लिखी गई है। आप ब्रिटिश निर्वाचन में नेहरू-रिपोर्ट को स्थान देना चाहती हैं। आपको अब भी मजदूर दल से भरोसा है कि वह औपनिवेशिक स्वराज्य दे देगा। भारत के लिए सब दल समान रूप से साम्राज्यवादी हैं। लायड जार्ज का 'स्टील फ्रेम', मेकडोनल्ड का 'काला कानून' और बाल्डविन का 'गोरा कमीशन' जोर शोर से इस तथ्य की घोषणा कर रहे हैं। यदि लीडर को अब भी विश्वास हो तो वह मजदूर नेताओं की 'उक्ति' को कान खोल कर सुन ले। वे कहते हैं कि साम्राज्य रक्षा मे हम किसी से पीछे नहीं रहेंगे। क्या अब भी लीडर को औपनिवेशिक स्वराज्य की आशा [illegible], तीनों दलों ने अपनी नीति की घोषणा कर दी पर भारत का नाम भी उसमे दिखाई नहीं देता। वह दलबन्दी से बाहर रखा गया है। हम श्रीमती [illegible] के अतुल परिश्रम और देशभक्ति की प्रशंसा करते हैं — पर उनके इस विश्वास से सहमत नहीं। आप कहा करती हैं कि देशभक्त ने बारडोली को बना दिया — आज स्वराज मिल जायगा। हम उनसे कर जोर विनती करते हैं कि वे अपने प्रभाव और साधन को बारडोलियां बनाने में लगा दें — भीख मांगने में नहीं।

बंगाल और आसाम में कौंसिल बरखास्त कर दी गई है, क्योंकि गवर्नर महोदय मन्त्रि-मण्डल बनाने मे असमर्थ थे। दोनो प्रान्तो मे निर्वाचन संग्राम प्रारम्भ हो गया है। स्वराज्यदल ने अपनी नीति की घोषणा कर दी है — पब्लिक सेफ्टी बिल, ट्रेड डिस्प्यूट बिल, मेरठ केस और द्वैध शासन प्रणाली। पं. मोतीलाल नेहरू तथा देश के अन्य नेताओं ने 'नेहरू-रिपोर्ट' को [illegible] प्रश्न बनाने की सलाह दी है। हम इसका समर्थन करते हैं। इससे सरकार पर दबाव डाला जा सकता है। कौंसिल बरखास्त करने का कारण राष्ट्रीय दलों की शक्ति को आंकना है। यदि स्वराजी जीत गए तो अन्य प्रान्तों की कौंसिलें बरखास्त नहीं होंगी। स्वराज्यदल के विजय लक्षण दिख रहे हैं।

परदेसी—

राजनीति

निःशस्त्रीकरण — आजकल जिनेवा में एक नाटक खेला जा रहा है। संसार के विभिन्न राष्ट्र विश्व शान्ति की उपासना करने के लिए निःशस्त्रीकरण पर विचार कर रहे हैं। विश्व शान्ति सचमुच किसी को अभीष्ट है या नहीं इसमें भी सन्देह है। सब यह ही चाहते हैं कि दूसरे देश के हथियार कम हो जाए और हमारे बढ़ जावें – सब अपनी ही भिन्न के हैं अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं। गत महायुद्ध के बाद अनेक सभाएं की गई, किसलिए? निःशस्त्रीकरण के लिए, पर वे सब असफल हुई। सब को सब दूसरे से डर है। भय, आशंका, सन्देह एवं प्रति स्पर्धा का वायुमंडल शान्ति की ओर नहीं ले जाता - वह तो युद्ध देवता का मार्ग है। वार्सेलीज की सन्धि के अनुसार जर्मनी को निःशस्त्र कर दिया गया - उसके शस्त्रास्त्र छीन लिए गए - किसलिए? शान्ति के नाम पर, समानता स्वतंत्रता और भ्रातृभाव के नाम पर। दुनिया को विश्वास दिलाया गया कि अब तक सब भी धीरे २ निःशस्त्रीकरण होंगे, दुनिया को धोखे में डालने के लिए अनेक सभाएं की जाती हैं पर वह 'धीरे २ किया गया निःशस्त्रीकरण' कहीं न दिखाई दिया। नज़ारा तो दूसरा ही है। सब राष्ट्र लगातार अपनी सेनाओं को बढ़ा रहे हैं। लीग्नेर रिपोर्ट के अनुसार फ्रांस में ४५१०,००० रूस में २८ ..००० और इटली में ३० ०० ००० जापान में २० लाख संरक्षित सेना है। गत महायुद्ध ने जिन छोटे राष्ट्रों की सृष्टि की - जिनके पास न धन है न दौलत जिनका व्यापार और व्यवसाय उन्नत नहीं - वे देश व्यापार और व्यवसाय को उन्नत करने के स्थान पर देश की आर्थिक एवं नैतिक अवस्था पर कोई ध्यान न देकर - शिक्षा की ओर से ध्यान हटा कर सेना की वृद्धि कर रहे हैं। आज पोलैण्ड में २०,००,००० जैकोस्लोवाकिया में १४,२८००० और युगोस्लोविया में २० ०००० से ऊपर संरक्षित सेना पड़ी है।

जिन राष्ट्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर इन नवीन राष्ट्रों की सहायता

करते हैं। फ्रांस को जर्मनी से डर है कि वह जर्मनी के विरुद्ध पोलैण्ड को उकसाता रहता है और रूस से डर है वह रूस के विरुद्ध जैकोस्लोवाकिया हंगरी रूमानिया और युगोस्लाविया को भड़काता है उनसे सैनिक सन्धि करता है विशेष रियायतें प्रदान करता है - इधर उसके अपने घर में आग लगी हुई है - फ्रांस की स्थिति डांवाडोल है ब्रिटेन और अमरीका का भय उससे नहीं जाता - कहना चाहिए कि बड़ा भय जिससे लिया जाता है जर्मनी और इटली है - उनका लक्ष्य प्राचीन साम्राज्य है वह उसकी पूर्ति के लिए अपने शस्त्रों को बढ़ा रहा है जन संख्या बढ़ा रहा है जो विवाहित नहीं हैं अथवा जिनके सन्तान पैदा नहीं होती उन पर कर लगा रहा है। वह उस दिन को देखना चाहता है जब उसके गड़गड़ाते वायुयान अपने पंखों से सूर्य को ढक दें। इस प्रकार पता चलता है कि यूरोप सैन्यवाद का उपासक बन रहा है। गत महायुद्ध के समय कहा जाता था कि यह युद्ध युद्ध की संस्था के विरुद्ध लड़ा जाता है - पर वर्तमान प्रभाव तो दूसरी ओर ही निर्देश कर रहे हैं।

इस अशान्ति अविश्वास, सन्देह और प्रतिस्पर्धा के वायुमंडल में आज कुछ साम्राज्यवादी एक बार विश्व शान्ति का नारा बुलन्द कर रहे हैं जो लोग इन नारों के सत्य को जान चुके हैं - वे इस [illegible] से ऊपर उठ चुके हैं। अब तो इन नारों में किसी प्रकार का सत्य नहीं रहा। यदि सचमुच ये राष्ट्र विश्व शान्ति के उपासक हैं तो क्यों नहीं ये रूस की शर्तों को स्वीकार कर लेते, क्यों नहीं वे राष्ट्र स्वतंत्रता, समानता और आत्म निर्णय के सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप देते हैं क्यों कि लोग भारत, निकारागुआ, मिस्र, इण्डो चाइना, फिलिपाइन आदि पर साम्राज्यवादी पंजा गाड़े हुए हैं क्यों ये राष्ट्र दिनों दिन सैनिक व्यय को बढ़ाते जाते हैं। यह इस बात का सूचक है कि निःशस्त्रीकरण सभाएं धोखे की टट्टी हैं। यदि इन में कुछ भी सत्य होता तो फिर विनोबा को निराश न होना पड़ता. केलोग पैक्ट पास होने के बाद यह समस्या फिर से न उठ खड़ी होती. इस परिस्थिति को देखकर दुनिया अब उस युग की ओर जो वाशिंगटन कॉन्फ्रेंस के बाद आई थी ने अपने उन संपूर्ण प्रयासों को ध्वंस कर दिया जो कि उसे समुद्र का स्वामी बना देते। आज

और जिन लोगों की कूट नीति का ज्ञान होता जाता है। अब वह अपनी आक्रमणीय जलीय एवं स्थलीय शक्ति के लिए आगे खर्च करता है। जर्मनी की निराशा है - वह सन्धि की शर्तों से बाध्य है, पर उसकी इच्छा है। उस ने भी अपनी रक्षा का प्रबन्ध प्रारम्भ कर दिया है। वह छोटे २ जहाज बनाता है। वे दस हजार टन के जहाजों से अधिक तेज दौड़ सकते हैं और अधिक भार की तोपों को लाद सकते हैं। इस प्रकार इस अविश्वास का परिणाम युद्ध निश्चित स्पष्ट कहा जा सकता है, मनुष्य जाति ने अभी तक उन सिद्धान्तों को नहीं अपनाया है - जिन को अपनाना उस का कर्तव्य था। वे समाज शुद्ध नहीं कर सकती हैं आवश्यकता है दृष्टिकोण के परिवर्तन की। यदि मनुष्य समाज सीधे रास्ते पर नहीं आयेगा तो अविश्वास, अभिमान एवं क्रान्तिकारी विज्ञान और बलात् शान्ति पथ का अनुगामी बना देगा।

ब्रिटेन और अमेरिका

समय २ पर ऐसी अफवाहें उड़ती रहती हैं कि, भावी महायुद्ध इंगलैण्ड और अमेरिका में होगा। इंगलैण्ड के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री मैकडोनल्ड ने भी इस प्रकार की आशंका प्रकट की थी। ब्रिटेन व्यापारिक तथा औपनिवेशिक देश है। और समुद्रों पर पूर्ण आधिपत्य चाहता है। जो इसके इस अधिकार का विरोध करेगा वह ब्रिटेन का स्वाभाविक शत्रु बन जायगा। इस प्रकार जो उस का व्यापारिक प्रतिस्पर्धी होगा वह भी उसका मित्र नहीं बना रह सकता है। गत महायुद्ध में इंगलैण्ड के प्रवेश करने का कारण यह ही था कि वह जर्मनी के बढ़ते व्यवसाय तथा व्यापार एवं जलीय शक्ति को नहीं सह सकता था। आज जर्मनी - जब उसका व्यापार व्यवसाय तथा नौशक्ति नष्ट हो चुकी है - ब्रिटेन का मित्र है। इस समय अमेरिका ने ब्रिटिश जलीय प्रभुत्व को चैलेन्ज किया है उसके व्यापार और व्यवसाय पर आघात किया हुआ है। १९२२ की तालिका को देखा-भाल कर अमेरिका का व्यापार १९१०-१४ की अपेक्षा दुगना होगया है। १९१०-१४ में जहां अमेरिका का व्यापार २११६० लाख डालर था वहां १९२२ में ४०४१० डालर हो गया है। यह व्यापार वृद्धि विशेषतः एशियाई देशों में हुई है - जहां ब्रिटेन का साम्राज्य है। १९१०-१४

रशिया के साथ १२५० लाख डालर का व्यापार किया था पर वह १९८२ में ११ द्द५० लाख डालर हो गया। चीन भारत जापान में पहिले से पांच गुना व्यापार बढ़ गया है। इसी प्रकार सोवियत रूस भी अमेरिका का बड़ा भारी ग्राहक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्रिटेन का स्थान अमेरिका लेता जा रहा है स्वार्थ ने लगभग को पराजित कर दिया है। यह ठीक है कि ब्रिटेन के पक्ष में महायुद्ध बड़ा भारी कारण हुआ है पर इसके साथ ही अन्य तत्वों का भी ध्यान रखना चाहिए। अमेरिका की कैरानीति सिद्धांत पर आश्रित है उधर ब्रिटेन पर उसके पूर्वजों की प्रथाएं भार स्वरूप होने पर छोड़ना नहीं चाहता उसने कुछ न कुछ भार लिए हुए हैं। इसी का परिणाम है कि ब्रिटेन के ५० कारखाने जितनी मोटरें उत्पन्न करते हैं उससे २० गुनी मोटरें ७, या ८ अमरीकन कारखाने करते हैं। इससे ब्रिटेन और अमेरिका के संघर्ष का अनुमान किया जाता है। ब्रिटेन का इतना भयंकर संघर्ष तो जर्मनी से भी न हुआ था। इस संघर्ष का अंत अमेरिका के पक्ष में होगा। अतएव अवश्य लेकिन भी हुआ की व्यावसायिक नीति का ही यह परिणाम है कि आज अमेरिका उन्नति के शिखर पर है। आप इस समय समझते हैं इसीलिए अपनी प्राचीन नीति का अवश्य अनुसरण करेंगे. ऐसी अवस्था में यह संघर्ष दिन रात बढ़ता जायगा। इसका लाभ तो अमेरिका के पक्ष में है यदि इतिहास अपने को दुहराता है तो यह संभावना करना अनुचित न होगा कि निकट भविष्य में ब्रिटेन और अमेरिका का भयंकर संघर्ष होगा।

पुराणों का ऐतिहासिक विवेचन

१ ऐतिहासिक मत

कुछ साल पूर्व तक ऐतिहासिक लोग पुराणों को निरा ऊलजलूल ही समझते थे। जिस प्रकार के पुराण वर्तमान समय में उपलब्ध होते हैं, उनको देखते हुए प्रत्येक विचारक का मन इसी प्रकार में बह जाता था। पर सब दिमाग एक समान नहीं हुआ करते। श्रीयुत पार्जिटर ने ३० वर्षों का लगातार पुराणों का अध्ययन किया और अपने अध्यवसाय के फलस्वरूप नवीन मत का प्रतिपादन किया। आज आपके मत को सम्पूर्ण ऐतिहासिकों ने स्वीकार कर लिया है। इसी मत को "ऐतिहासिक मत" कहा जाता है। आपने अपने मत की व्याख्या विस्तारपूर्वक "Ancient Historical Tradition" तथा "Dynasties of the Kali Age" नामक ग्रन्थों में की है।

प्राचीन समय में दो मुख्य विभाग थे। इन्हें ब्राह्मण और क्षत्रिय कहा जा सकता है। ब्राह्मण लोग जंगलों के अन्दर अपना तपस्यामय जीवन व्यतीत करते थे, उनका नगरों से कोई विशेष सम्बन्ध न था। ब्रह्मध्यान, ब्रह्मोपासना, ब्रह्मविद्या — यह ही उनका उद्देश्य था। इन लोगों ने वनों के अन्दर रहते हुए एक अनुश्रुति का विकास किया था — इसे हम "ब्राह्मण अनुश्रुति" कह सकते हैं। "ब्राह्मण अनुश्रुति" को ही दूसरे शब्दों में "वेद" कहा है।

कुछ लोग नगरों में आबादियां बसा कर बसे हुए थे — ये भौतिक उन्नति करते थे। इनका जीवन संसारी था। इन लोगों ने भी एक प्रकार की अनुश्रुति का विकास किया था — वह थी "क्षत्रिय-अनुश्रुति"। इसमें सर्वसाधारण के विचार, विश्वास, रीति, नीति और भावनाओं का समावेश था। इस में ही तात्कालीन राजाओं और राज्य पद्धतियों का उल्लेख था। इस संसारी व्यक्तियों की अनुश्रुति का नाम ही "पुराण" है। कभी कभी ऋषि मुनि लोग राजाओं के पास भिक्षार्थ आ जाया करते थे इसलिए कहीं कहीं उनका तथा उनके विचारों और विश्वासों का भी उल्लेख पाया जाता है। इसी प्रकार राजा लोग भी ऋषियों और मुनियों के उपदेशामृत से तृप्त होने के लिए, विविध विधानों के अनुष्ठान तथा पुत्रादि की प्राप्ति के लिए उनके आश्रमों में चले जाया करते थे- इसलिए वेदों में राजाओं के नाम भी आजाते हैं। इसलिए आवश्यक है कि वेद के अर्थों को समझने के लिए पुराणों से सहायता लीजाय — "इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत"।

अभीतक ऐतिहासिक लोग वेदों से प्राचीन भारत के इतिहास निर्माण में सहायता लिया करते थे, पर पार्जिटर ने कहा कि चूंकि पुराण

"क्षत्रिय अनुश्रुति" है, इसलिए इतिहास का ज्ञान पुराणों से ही हो सकता है "ब्राह्मण-अनुश्रुति" वेद से नहीं। उन्होंने कहा कि वेदों से इतिहास-निर्माण करने का प्रयत्न ठीक इस प्रकार होगा जैसे कि कोई व्यक्ति यूरोपीय इतिहास की सम्पूर्ण पुस्तकों के नष्ट हो जाने पर धार्मिक पुस्तकों के आधार पर उसके पुनर्निर्माण का प्रयत्न करे।

पहले पहल पुराणों में केवल मात्र क्षत्रिय-अनुश्रुति का ही उल्लेख था। ब्राह्मणों ने बौद्धधर्म के पतन तथा ब्राह्मण धर्म की पुनःस्थापना के लिए आवश्यक समझा कि सर्वसाधारण जनता को अपने साथ किया। इसका एक ही उपाय था— क्षत्रिय अनुश्रुति को स्वीकार करना। आवश्यकताओं से बाधित होकर ब्राह्मणों ने पुराणों को अपना लिया— उन्हें भी वही स्थान दिया जो कि वेदों को प्राप्त था। उनकी पवित्रता को बढ़ाने के लिए उनको संस्कृत में ढाल दिया तथा अपने भावों को भी सामान्य जनता में पहुंचाने के लिए उसमें ब्राह्मण अनुश्रुति का प्रवेश करा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पुराणों में बहुत सी गाथाएं भर गईं और उसका मूल उद्देश्य गौण बन गया और गौण मुख्य।

२ ३ । १२ । ७

यद्यपि बहुत से पुराण उपलब्ध होते हैं - पर हम उन पर ही विचार करेंगे, जिनमें ऐतिहासिक वंशावलियां तथा राजाओं का वर्णन है। ये पुराण सात हैं— मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, भागवत, गरुड़ और भविष्य। मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड पुराण बहुत अधिक मिलते हैं। वायु और ब्रह्माण्ड तो इतने अधिक मिलते हैं कि वे एक ही मूल पुराण के पाठभेद प्रतीत होते हैं। मत्स्य भी बहुत मिलता है। यह निश्चित है कि वे एक मूल पुराण पर आश्रित हैं:—

(i) सब पुराणों में लिखा है कि वे भविष्य के आधार पर हैं;

(ii) जहां वायु और ब्रह्माण्ड आपस में नहीं मिलते, वहां उनमें से एक मत्स्य से मिलता है,

(iii) उनकी हस्तलिखित प्रतियां जहां आपस में भिन्न हैं, उनमें से एक अन्य हस्तलिखित प्रति मत्स्य से मिल जाती है,

(iv) एक पुराण में कहीं कहीं कोई श्लोक छूट गया है, जो कि अन्य एक या दो में पाया जाता है और उस पुराण की भी एक अन्य हस्तलिखित प्रति में उपलब्ध होता है.

इस समानता के होते हुए भी मत्स्य का कलेवर वायु और ब्रह्माण्ड से भिन्न है। इन तीनों पुराणों की सहायता से मूल पुराण का पता लगाया जा सकता है। साधारणतया प्रत्येक राजा के बारे में एक पंक्ति लिखी गई है। प्रमुख राजाओं का दो या अधिक पंक्तियों में उल्लेख है। पौरव, ऐक्ष्वाकु और बार्हद्रथ राजवंशों के प्रथम राजाओं में से दो का नाम भविष्य में है। ये छन्द में हैं।

विष्णु और भागवत पुराण आपस में बहुत मिलते हैं। भेद केवल इतना है कि विष्णु गद्य में है और भागवत पद्य में। ये पुराण उपरोक्त तीनों पुराणों के संक्षिप्त रूप हैं। पर पौरव और ऐक्ष्वाकु वंश के अन्त में श्लोक आते हैं।

भागवत और विष्णु पुराण में जहां कहीं विस्तार से वंशवृत्त लिखा है वहां वह तीनों पुराणों से मिलता है। ये विशेषताएं इस बात की सूचक हैं कि ये किसी पुराण के आधार पर लिखे गए हैं और उसका संक्षिप्त रूप हैं, तथा इनकी रचना पीछे हुई है।

गरुड़ में पौरव, ऐक्ष्वाकु और बार्हद्रथ राजवंशों का उल्लेखमात्र है। राजाओं के नामों के सिवाय अब कुछ नहीं।

भविष्य पुराण अब वेंकटेश्वर प्रेस का छपा आता है। पर यह बहुत बिगड़ गया है। इसकी भविष्यवाणी को समकालीन रखने के लिए इसे बढ़ाया गया है। इसमें १९ वीं सदी तक की बातें हैं।

3 [illegible]

हम ऊपर लिख आए हैं कि ये पुराण किसी पुराण के आधार पर लिखे गए हैं। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वह कौन सा पुराण है? पुराणों की अन्तःसाक्षी से ज्ञात होता है कि वे भविष्य पुराण के आधार पर ही उनकी रचना हुई है। मत्स्य पुराण में लिखा है:— "तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान्"। वायु में इसे और भी अधिक स्पष्ट किया गया है:— "तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये पठितान् नृपान्"। वंशवृत्त के अन्त में मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड में लिखा है:— "भविष्ये ते प्रसंख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः।" मत्स्य पुराण की दो हस्तलिखित प्रतियों में इस बात को और भी अधिक स्पष्ट किया गया है। वहां भविष्य के साथ "पुराण" शब्द का भी पाठ किया गया है:— "भविष्ये ते प्रसंख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतिसाधिभिः।" इस प्रकार यह सिद्ध है कि मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड भविष्य के आधार पर हैं। यह देखा जा चुका है कि विष्णु और भागवत इन्हीं के संक्षिप्त रूप हैं। पर उपलभ्यमान "भविष्य पुराण" बहुत बिगड़ गया है — अतः वह किसी काम का नहीं।

[illegible]

ये पुराण भविष्यत् प्रकार में हैं। ये भविष्यवाणी करते हैं। पर वंशवृत्त लिखने में भेद है। पराशर ने विष्णु पुराण मैत्रेय को सुनाया। यह स्वयं अपने आप को परीक्षित के समय लिखा बताता है। इससे पूर्व के राजा भूत में और बाद के भविष्यत् में वर्णित हैं। यह ऐक्ष्वाकु तथा बार्हद्रथ वंश को महायुद्ध के बाद से शुरू करता है। पर यह ठीक नहीं, क्योंकि पराशर व्यास का पिता था। वह महायुद्ध से पूर्व मर चुका था।

गरुड़ को छोड़कर शेष पुराण नैमिषारण्य में बारह वर्ष के यज्ञ में सूत द्वारा ऋषियों को सुनाए गए हैं। इन पुराणों की अन्तःसाक्षी इस बात को प्रमाणित किया कि इस समय अधिसीम कृष्ण का राज्य था। वायु और मत्स्य अधिसीम कृष्ण से पूर्ववर्ती राजाओं के साथ भूत लकारों की क्रिया लगाते हैं और पश्चाद्वर्ती राजाओं के साथ भविष्यत् लकार की क्रियाएं लगाते हैं। 'भविष्यता' बनाए रखने में ये दोनों बहुत सफल

हुए हैं। विष्णु, वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड, गरुड़ और भागवत भी इसी पद्धति को लेते हैं।

स्थान स्थान पर 'अभवत्' 'स्मृत' आदि भूत लकार के प्रयोग आते हैं। पीछे से पुराणों को पूर्णतया भविष्यवक्ता बनाने के लिए संशोधन किए जाते रहे हैं।

यद्यपि ये पुराण भविष्यकथा में व्यक्तियों को अथवा पौरव राजाओं को सुनाए गए हैं, पर इन का केन्द्र मगध है—मगध को सम्मुख रख कर ही ऐतिहासिक परिवर्तनों पर विचार किया गया है। पौरव और ऐक्ष्वाकु राजाओं में से दो दो का एक एक पंक्ति में नाम है, राज्यकाल में का उल्लेख नहीं; पर बार्हद्रथ वंश के प्रत्येक राजा को एक एक पंक्ति दी गई है। किस राजा ने कितने वर्ष राज्य किया—इसका भी उल्लेख है। इन प्राचीन राजवंशों के बाद उन्हीं राजवंशों का उल्लेख है, जिन्होंने या तो मगध पर शासन किया अथवा उस पर प्रभुत्व स्थापित किया।

वर्तमान मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड पुराण इस समय संस्कृत में उपलब्ध होते हैं—पर इनका मूल प्राकृत था। हम कह सकते हैं कि वर्तमान पुराण प्राचीन प्राकृत श्लोकों के रूपान्तर हैं। हम इसमें निम्न हेतु दे सकते हैं:—

(i) कई वाक्य जैसे कि वे संस्कृत रूप में विद्यमान हैं—छन्द के नियमों को तोड़ते हैं; यदि वे प्राकृत रूप में होते तो छन्द ठीक बनता।

(ii) कई प्राकृत शब्द स्थान स्थान पर प्रयुक्त होते हैं—विशेष तया छन्द को ठीक करने के लिए—यदि उनके स्थान पर संस्कृत शब्द प्रयुक्त किए जांय तो छन्द ठीक न बनेगा।

(iii) वाक्यविन्यास के ठीक न रहने पर भी छन्दोरक्षा के लिए कई संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया गया है। यदि उनके स्थान पर संस्कृत शब्दों का प्रयोग होता तो वाक्य विन्यास शुद्ध बनता।

(iv) नामों का अशुद्ध संस्कृत रूप।

(v) छन्द की पूर्ति के लिए 'तु' 'च' 'हि' 'वै' का प्रचुर प्रयोग।

(vi) अनियमित सन्धि

प्राकृतों का संस्कृत से बहुत अधिक सम्बन्ध था—इसलिए प्राकृत को संस्कृत में रूपान्तरित करना कठिन नहीं था। 600 ई० पू० में भारत में लिपि का प्रचार हुआ। सब से पूर्व लिपि का प्रयोग राजदरबारों की कार्रवाई को रिकार्ड में रखने के लिए किया गया होगा, रिकार्ड को लिखने वाले संस्कृत से इतने परिचित न थे, अतः इनको सामान्य जनता की बोली तथा भाषा एवं लिपि में ही लेबद्ध किया गया। सामान्य जनता का प्राचीन इतिवृत्तों में बहुत शौक होता है, इसलिए वे इसमें दिलचस्पी लेते थे। इस सामग्री को लेकर भाटों ने गीत बना कर गाने प्रारम्भ किए। इस समय मगध एक शक्तिशाली राष्ट्र था। अतः इसे केन्द्र में रख कर इतिवृत्त की रचना की गई। मागध भाट होते थे। अनुश्रुति को पद्य करना सरल होता है—गद्य के रूप में तो और भी सरलता होती है।

मागध इन इतिवृत्तों को गाते थे- इसलिए हम कल्पना कर सकते हैं कि ये मागधी भाषा में सर्व प्रथम बोले गये थे।

५ काल निर्णय

अब हम पुराणों के काल पर विचार करते हैं। हम पुराणों की अन्तःसाक्षी के आधार पर ही काल-निर्णय करने का प्रयत्न करेंगे। दो प्रकार की अन्तः साक्षियां हैं:- प्रथम तो विषय और द्वितीय भाषा सम्बन्धी विशेषताएं। हम पहले पुराणों में वर्णित विषय के आधार पर विचार करेंगे।

पुराणों में वंशवृत्त का उल्लेख है- यह दो स्थानों पर समाप्त होता है। प्रथम समाप्ति आन्ध्रों का पतन है। मत्स्य पुराण किलकिल राजाओं के साथ समाप्त हो जाता है- इसके बाद के इतिवृत्त पर मत्स्य की किसी भी प्रतिलिपि से प्रकाश नहीं पड़ता। आन्ध्रों का पतन २३५ ई. प. हुआ- अर्थात् मत्स्य पुराण में तीसरी शताब्दी के मध्य तक का इतिवृत्त वर्णित है।

वंशवृत्त की द्वितीय समाप्ति गुप्तवंश का उदय काल है। वायु, विष्णु, ब्रह्माण्ड और भागवत में यहां पर इतिवृत्त समाप्त हो जाता है। पुराणों में लिखा है कि गुप्त लोगों का शासन प्रयाग, साकेत और मगध में था। यह वर्णन चन्द्रगुप्त I के शासन की सीमा को सूचित करता है। इसने ३१९ से ३३० ई. प. तक शासन किया। इन्हीं के साथ ही नाग, माहीषक तथा गुप्त राज्य के समन्ततोवर्ती तथा समकालीन राज्यों का वर्णन है। इन को समुद्रगुप्त ने गुप्त-साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि ये पुराण चन्द्रगुप्त I के शासनकाल तथा समुद्रगुप्त के एकदम गद्दी पर बैठने के बीच के समय में ही बने हैं- क्योंकि समुद्रगुप्त ने गद्दी पर बैठते ही दिग्विजय प्रारम्भ कर दी थी। यह मध्यस्थान लगभग ३२०-३३० या ३३५ ई. प. तक है। यदि पुराण इसके बाद संगृहीत किए जाते तो यह असम्भव था कि उनमें समुद्रगुप्त की विजयों का वर्णन न होता तथा उन राज्यों की स्वतन्त्रता का उल्लेख होता- जिन्हें समुद्रगुप्त ने अपने आधीन कर लिया था। इस से स्पष्ट है कि पुराण-संग्रह काल अधिक से अधिक पीछे करने पर भी ३३५ ई. प. के पश्चात् नहीं किया जा सकता।

अब हम भाषा सम्बन्धी विशेषताओं पर विचार करते हैं। प्राचीन समय में छापेखाने तो थे ही नहीं, इसलिए प्रत्येक पुस्तक को हाथ से ही लिखा जाया करता था। कई अक्षर इतने मिलते जुलते होते थे कि सामान्य लेखक उन में भेद नहीं कर सकता। इस लिए जिस लेखक ने उसे जैसा पढ़ा- वही लिख दिया। इस प्रकार अनेक पाठान्तर पाए जाते हैं। यदि हम यह पता लगा लें कि किस लिपि में इस प्रकार अक्षर एक दूसरे से मिलते जुलते हैं- तब हम उस पुस्तक का कालनिर्णय कर सकेंगे। मत्स्य, वायु और विष्णु के पाठान्तर इस बात की सूचना देते हैं कि इस गड़बड़ का श्रेय खरोष्ठी लिपि को ही है। इससे यह परिणाम

निकलता है कि पुराण सबसे पूर्व संस्कृत भाषा में खरोष्ठी लिपि में लिखे गए थे। तब पुराणों ने भविष्य को आरम्भ में रखा है— इसलिए यह खरोष्ठी में होगा। भविष्य का संग्रह भी उत्तरीय भारत में हुआ होगा क्योंकि खरोष्ठी का प्रचार उत्तरी भारत में ही था। 330 ई.प. कहीं भी खरोष्ठी के दर्शन नहीं होते — इससे यह परिणाम निकलता है कि 330 ई.प. के पश्चात भविष्य कदापि नहीं बन सकता।

इस प्रकार सिद्ध है कि भविष्य 330 ई.प. के बाद कभी नहीं बन सकता + अन्य पुराण भविष्य से लिए गए हैं— इससे यह कल्पना नहीं करना चाहिए कि भविष्य से पूर्व कोई पुराण नहीं था। 'पुराण' शब्द भूत का सूचक है और 'भविष्य' भविष्यत् काल का। जब इस प्रकार दो शब्दों में इतना विरोध है तो किस प्रकार कोई बुद्धिमान निस्संकोच भाव से उनका सम्बन्ध कर सकता है? भविष्य पुराण — यह शीर्षक इस बात का सूचक है कि ~~'पुराण शब्द~~ 330 ई.प. में 'पुराण' शब्द ने अपने मौलिक अर्थ — प्राचीनतम, पुराना — को सर्वथा खो दिया था और वह पुराणों में गर्भित साहित्य का सूचक हो गया था— उसका वास्तविक अर्थ नष्ट हो चुका था और रूढ़ार्थ प्रधान अर्थ बन गया था। किसी शब्द के अपने मौलिक अर्थ को सर्वथा विलुप्त कर देने के लिए कम से कम तीन सदियों की आवश्यकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ईसा की प्रथम सदी में भी — और उससे पूर्व भी — पौराणिक साहित्य विद्यमान था।

७ संस्कृत में पुराणों का रूपान्तर

ऐतिहासिक मत का प्रदर्शन करते हुए हम इस बात का उल्लेख कर आए हैं कि किन आवश्यकताओं से बाधित कर ब्राह्मणों ने पुराणों को अपनाया — उन्हें संस्कृत रूप दिया तथा स्मृति-अनुश्रुति के साथ ही अपने दार्शनिक तथा धार्मिक विचारों एवं विश्वासों ~~को बाधित होकर~~ पुराणों में स्थान दिया। मूल भाषा का प्रदर्शन करते हुए हम इस बात को भी सिद्ध कर चुके हैं कि पुराणों की मूल भाषा संस्कृत न होकर प्राकृत थी — और वह भी सम्भवतः मागधी थी। संस्कृत में रूपान्तरित करते हुए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा — स्थान स्थान पर पद्य टूटता था इसलिए विषय तथा अर्थ को क्षति न पहुंचाते हुए जिन शब्दों को उड़ाया जाना सम्भव था — शासन किया, वर्ष आदि — उनको उड़ा दिया। पद्य की रक्षा के लिए 'तु' 'हि' 'च' 'वै' का आश्रय लिया गया तथा वाक्यों को फिर दुहरा दिया गया। यह सब होते हुए भी ठीक ठीक संस्कृत रूप नहीं बने हैं। संस्कृत में रूपान्तरित करते हुए पुराणों के वैदिक अधिकार की स्थापना के लिए भूत क्रियाओं के स्थान पर 'भविष्यत्' काल की क्रियाओं का प्रयोग किया गया। स्थान पर 'अभवत्' 'स्मृतः' आदि इस प्रक्रिया को सूचित करते हैं। भविष्यत् काल

रखने में सब पुराणों में से वायु और मत्स्य सबसे अधिक सफल हुए हैं।

सब से पूर्व सब पुराणों में एक ही विषय था पर वर्तमान पुराणों में बहुत सी अशुद्धियां हैं - कइयों में श्लोक छूटे हुए हैं। इस प्रकार की अव्यवस्था नकल करने वालों की असावधानी तथा पत्रों के बदलने तथा गुम हो जाने से हुई है। ब्राह्मण लोगों ने कलि युग के परिणामों तक ही अपनी परिवर्तन चातुरी को सीमित रखा है - उन्होंने वंशावलों में कुछ परिवर्तन नहीं किया - क्योंकि उन्हें क्षत्रिय अनुश्रुति से कुछ लेना देना नहीं था। कहीं कहीं कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं। कई राजाओं के नाम किसी किसी पुराण की केवल मात्र एक ही प्रति में उपलब्ध होते हैं। उनकी सत्ता शिलालेखों, साहित्य अथवा मुद्राओं से भी सिद्ध है। कई श्लोक केवल एक ही पुराण में मिलते हैं इसलिए हमें किसी पुराण की किसी पंक्ति की इसलिए उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिए कि वह एक ही प्रति में उपलब्ध होता है - शायद यह नाम प्रक्षिप्त ही हो।

पुराणों का अर्थ समझने के लिए आवश्यक है कि पहले यह समझ लिया जाय कि मूल पुराण प्राकृत में थे। इससे संख्या की व्याख्या तथा नामों के जानने में बहुत सरलता होगी। इससे ज्ञात होगा कि किस प्रकार नामों में परिवर्तन हुआ। इससे श्लोकों को समझने में सहायता मिलेगी और अशुद्ध लेखों को पढ़ने में सुविधा होगी। सब से अच्छा ढंग यह होगा कि पाठान्तरों को प्राकृत में परिवर्तित कर प्राचीन प्राकृत लिपियों में लिखा जाय और यह पता लगाया जाय कि मूल रूप क्या था। मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

संख्या के सम्बन्ध में बहुत कठिनता आती है। प्रायः पुराणों में 'विंशति' और 'त्रिंशत' संख्या आती है - यह विंशत अथवा विंश, त्रिंशत अथवा त्रिंश रूप में पाई जाती है। प्राचीन लिपि में यदि असावधानी से व और त को लिखा जाय तो उनमें भेद नहीं हो सकता। इस लिए स्थान स्थान पर 'त्रिंशत' के स्थान पर 'विंशति' और 'विंशति' के स्थान पर 'त्रिंशत' हो गया है। अतः हस्तलिखित प्रतियों को छोड़कर अन्य ऐतिहासिक सामग्री पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

संख्या के अतिरिक्त कई अन्य शब्द भी हैं जो प्रायः लेखकों द्वारा अशुद्ध लिखे गए हैं। प्राचीन लिपि के अनुसार शीघ्रता से लिखने पर 'अद्ध' को 'अष्ट' पढ़ा गया है। कई स्थानों पर 'द्ध' 'ट्ठ' बन गया है - वह [illegible] है। इसी प्रकार 'समा' के स्थान पर 'सप्त' लिख दिया गया है क्योंकि 'म' और 'प्त' में प्राचीन लिपि में जल्दी लिखने पर कोई भेद नहीं रह जाता। 'ति' को 'वे' लिखा गया

है – इससे सप्तुति के स्थान पर सप्तु ही पढ़ा जाता रहा है। 'दश' को 'शत' और 'शत' को 'दश' लिखा गया है। इस प्रकार की अनेक अशुद्धियाँ लेखप्रमाद से पुराणों में हुई हैं। पार्जिटर ने इन पर विस्तार से विवेचन किया है। इस लिए पुराणों का अर्थ समझने के लिए जितनी भी प्रतिलिपियाँ तथा पाठान्तर संग्रह किया जा सकें – वह आवश्यक ही है। साथ में प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कस कर अवश्य ही देखना चाहिए। श्रीयुत भाण्डारकर के शब्दों में प्रत्येक ऐतिहासिक को समीक्षक एवं समालोचक होना चाहिए – इसी सम्पूर्ण ऐतिहासिक सामग्री की सहायता लेनी उचित है।

उपसंहार

हम ऊपर यथोचित विस्तार और संक्षेप [illegible] पुराणों का सामान्य विवेचन कर आए हैं। हम जिन परिणामों पर पहुंचे हैं – उन्हें संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है। [illegible] प्रथम भविष्य पुराण से 'कलियुग' के राजवंशों का परिज्ञान होता है। मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड ने इस इतिवृत्त को भविष्य से लिया। शेष पुराणों ने भी अपना विषयतत्व इन्हीं के आधार पर कुछ लिखा है। कोई पद्य में है और कोई गद्य में – तथा कई स्थानों पर अत्यधिक संक्षिप्त वर्णन है और कई स्थानों पर बढ़ा दिया गया है। यद्यपि सब

वर्तमान पुराण भविष्य के आधार पर ही 'वंशवृत्तों' का उल्लेख करते हैं, पर हम देख चुके हैं कि, भविष्य से पूर्व भी पुराण विद्यमान थे – 'भविष्य' और 'पुराण' ये दो विरोधी शब्द तथा उनका समन्वय हमें इस परिणाम पर पहुंचाता है कि पुराण शब्द सक्रिय अनुश्रुति का द्योतक बन चुका था, उसका वास्तविक अर्थ लुप्त हो गया था। भाट लोग इसको गाते फिरते थे। उन्होंने ही पुराणों को [illegible] का रूप दिया। जब ७०० ई. पू. में लेखनकला का विकास हो गया तब ये लिपिबद्ध किए गए – पर उनमें पिछले राजाओं का उल्लेख न था। पुराणों की भाषा प्राकृती थी और लिपि खरोष्ठी। [illegible] के हेतु से यत्न कर [illegible] की गई। साधारण जनता को अपने पक्ष में करने के लिए ब्राह्मणों ने इन्हें प्राकृत से संस्कृत में किया। क्षत्रिय-अनुश्रुति के साथ ही ब्राह्मणों ने [illegible] अनुश्रुति, विचार, विश्वास और भावनाओं का सम्मिश्रण कर दिया – इसलिए पुराणों में कपोलकल्पना तथा मिथ्या विश्वासों का समावेश हो गया। पुराणों की अन्तःसाक्षी तथा आख्यान सम्बन्धी विशेषताएं पुराणकाल को ३३५ ई. प. में प्रतिपादित करती हैं।

राजहंस



शान्ति निकेतन

लाहौर की चिट्ठी

२६ ४ २६

श्री युत सम्पादक महोदय,

राजहंस के लिये "लाहौर की चिट्ठी" लिखने के लिये आप का पत्र मिला। मुझे नहीं मालूम कि आप का पत्र पाक्षिक है या मासिक, त्रैमासिक है या षाण्मासिक। परीक्षाओं की गर्मी में जुटने वाले विद्यार्थियों द्वारा सम्पादित पत्र साल के विविध रूपों में प्रकाशित होते हैं। इसी लिये आप लोगों का 'राजहंस' कवि परम्परा तथा प्रकृति परम्परा के विपरीत, शीतऋतु के स्थान पर गर्मियों में प्रचण्डता से विहार करने के लिये उतरा है।

कवियों के रस... तथा प्रकृतिमाता के उज्ज्वल-यश को गाने वाले राजहंस, कास कुसुम की धवलता के वातावरण में मन्त्रियों तथा मित्रों का मनोविनोद करते हैं। आप का यह 'राजहंस' प्रचण्ड ग्रीष्म में भी विहार करेगा। यह वास्तव में गंगा के शीतल जल का ही प्रभाव है। असम्भव नहीं कि शायद, आप, गंगाजल की शीतलता का आनन्द लूटने के लिये प्रतिदिन "राजहंस" को पुलको-लता अथवा गुरुकुल-उपवन के रंगमंच पर उतारा करें। परन्तु लाहौर की प्रचण्ड गर्मी में तपे हुए लोगों को राजहंस के दर्शन दुर्लभ हैं। इस लिये राजहंस के प्रत्येक पक्ष-विकास के लिये पत्र लिखना मुश्किल है। हाँ, इस प्रथम अवसर पर कुछ न कुछ लिखना मुश्किल नहीं।

* * * *

अप्रैल का यह महीना लाहौर के इतिहास में विशेष महत्व रखता है। अप्रैल महीने की साम्प्रदायिक घटनाओं ने देश के सार्वजनिक जीवन में हल-चल पैदा कर दी है। आप के पाठकों ने स्वर्गीय राजपाल जी की कायरतापूर्ण हत्या का समाचार पढ़ ही लिया होगा। लाहौर भर में इस घटना के कारण दो तीन दिन तक सनसनी रही। स्थानीय समाचारपत्रों ने इस सनसनी को अपनी अदूरदर्शिता के कारण अत्यन्त उत्तेजक बना दिया। असम्भव नहीं था कि यह घटना पञ्जाब के हिन्दुओं और मुसलमानों में फिर से वैमनस्य पैदा कर देती परन्तु सरकार के अन्याय पूर्ण व्यवहार तथा देहली की नव... दुर्घटना ने लोगों का ध्यान सरकार की दमन नीति तथा क्रान्तिकारियों की

आतङ्क नीति की ओर आकृष्ट कर दिया।

× × × × ×

लाहौर की कचहरी में स्व० राजपाल के कातिल का मुकद्दमा चल रहा। उन के स्मारक के लिये स्थानीय हिन्दू-संस्थाएं चन्दा भी इकट्ठा कर रही है किन्तु दिल्ली बम्ब दुर्घटना के बाद हुई गिरफ्तारियों ने पुलिस तथा जनता का ध्यान छुरों से हटा कर बम्बों की तरफ खींच लिया है। महाशय राजपाल जी की दुकान पर पहरा लगा है। कुछ एक मुसलमान स्व० राजपाल के प्रति प्रकट की गयी श्रद्धा से [illegible] भी रहे हैं, परन्तु उन का साहस नहीं होता कि वे इस के सम्बन्ध में किसी प्रकार की सहानुभूति प्रकट कर सकें।

× × × ×

लाहौर बम्ब [illegible] के सम्बन्ध में गिरफ्तार हुए नवयुवकों के विषय में अभी तक कुछ पता नहीं चला। पोलीस मामले को गुप्त रख रही है। अनुमान यह है कि [illegible] तीनों गिरफ्तार नवयुवकों से उसे कोई बात पता नहीं लगी। इसी लिये वह दूसरे शहरों में छापे डाल कर कोई न कोई सुराख पता लगाने की [illegible] में है। दिल्ली के वकील आसिफ अली की भांति अभी तक किसी वकील ने इन की पैरवी करने की बात नहीं की। इस समय कुछ भी कहना मुश्किल है।

लाहौर तथा दिल्ली की इन घटनाओं का अफगानिस्तान के सम्बन्ध में आन्दोलन करने वाले मुसलमानों के व्यवहार पर भी असर पड़ा है। इन घटनाओं से पूर्व लाहौर के वक्ता, व्याख्याता तथा पत्र सम्पादक अपनी सम्पादन कला का प्रयोग अफगानिस्तान के सम्बन्ध में सनसनी फैलाने वाली खबरें प्रकाशित करने में करते थे। परन्तु इन घटनाओं ने अफगानिस्तान से उन का ध्यान हटा कर इधर लगा दिया है।

× × × × ×

लाहौर में होने वाली कांग्रेस के लिये तैयारी हो रही है। समाचार-पत्रों में, विशेषतः ट्रिब्यून में आप लोग स्थानीय कांग्रेसी नेताओं के दौरों का हाल पढ़ते होंगे, और समझते होंगे कि यहां बहुत काम हो रहा है। परन्तु यह सब कार्य ऊपर का दिखावा मात्र है। असली कार्य — रचनात्मक कार्य, विदेशी वस्त्र बहिष्कार आदि — की तरफ कोई विशेष ध्यान नहीं दे रहा। केवल रविवार को मीटिंग हो जाती है। इस का कारण यह है कि कांग्रेस के कार्यकर्ता लीडर उसी ढंग का काम करना चाहते हैं जिस में वह जनता की आंखों के

सामने रहें और स्वागत समिति के निर्वाचित केवल स्वागताध्यक्ष, प्रधान मन्त्री तथा स्वयंसेवक दल के महानायक बन सकें इसी लिये यह दौड़ें भी धूमधाम है।

× × × ×

रचनात्मक कार्य की इस बुरी स्थिति से अधिक चिन्ताजनक रुख और घटना लाहौर के सार्वजनिक जीवन में हो गयी है वह है कौंसिल तथा एसेम्बली के निर्वाचनों की चहल पहल। महत्वाकांक्षी लीडर लोगों की आँखों के सामने आने वाले लोग अभी से स्कीमें बना रहे हैं मनसूबे बढ़ा रहे हैं और तोड़ की तैयारी में लगे हैं। पार्लियामेन्टरी कौंसिल के यह निर्वाचित [illegible] सम्बन्ध होने वाली कांग्रेस के लिये लाभप्रद होंगे या हानिकारक। इस सारी खेंचातानी की परिस्थिति का हल होना मुश्किल ही दिखाई देता है।

× × × ×

लाहौर के नवयुवक पहले कुछ महीनों से राजनीति में विशेष भाग लेने लगे थे उठते हुए नेताओं ने इनकी सहायता से अपनी उमङ्गों को पूरा करने की स्कीमें भी बनाईं थीं। परन्तु युवक अभी किसी के भी हाथ नहीं बने। वह भी इन नेताओं की चालों से उद्विग्न हो रहे हैं। लाहौर के दीवान चमनलाल अपनी अंग्रेजी के कारण विद्यार्थियों में बहुत प्रिय थे परन्तु एसेम्बली की बम दुर्घटना के सम्बन्ध में उन्होंने जो बयान दिया था उसके मुकाबले में पं. मोतीलाल जी के बयान को देखकर विद्यार्थियों के दिलों में उनके लिये विशेष मान का भाव नहीं रहा।

विद्यार्थी लोग इन दिनों परीक्षाओं की तैयारी में लगे हुए हैं। लाहौर के बाग बगीचे इन्हीं से भरे रहते हैं।

मई तथा जून के बाद लाहौर में वीरानगी होगी। सार्वजनिक जीवन की विशेष चहल पहल सर्दियों में होगी अभी तो कुछ ~~दिनों तक~~ महीनों तक विशेष जागृति की सम्भावना नहीं दिखायी देती।

× × ×

लोग मुकद्दमों की तिथियों की भी प्रतीक्षा में ही दिन बिता रहे हैं।

———

रूमानिया

सर्व साधारण इस बात के आदी बने हुए हैं कि क्रान्ति का नाम सुनने से ही वे समझते हैं कि कहीं खून खराबी हो गई है। अभी रूमानिया में एक क्रान्ति हुई है। पर यह खूनी नहीं है — इसमें शान्ति का क्षेत्र है। रूमानिया के इतिहास में पहली ही बार मानवीय मताधिकार का उपयोग किया गया। साम्राज्य-पद्धति के शिकार, अपढ़, गंवार तथा अशिक्षित जनता के हाथ में एक दम अधिकार दे दिया गया। यह प्रथम प्रयोग सफल हुआ है। इस समय तक रूमानिया के निर्वाचनों में बैंको, व्यापारियों, मार्शल ला, सैन्यशिप और राजा का प्रभुत्व ब्रिटेनों के उदार दल का साथ दिया जाता था। निर्वाचन को इतना अधिक संकुचित किया हुआ था कि किसी दल के विजय की कोई सम्भावना ही नहीं थी। पर राष्ट्रीय किसान दल के नेता, वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री जुलियु मनियु ने मानवीय मताधिकार की घोषणा की थी। सब प्रकार के बाहरी दबावों को दूर कर दिया। जनता ने अपनी स्वतन्त्र इच्छा से मत दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि उदार दल का प्रभुत्व जाता रहा। किसान-दल की विजय हुई। प्रतिनिधि वर्ग, में ३७५ में से ३४८ और सीनेट में ११३ में से ११० सदस्य किसान दल के हैं। रूमानिया कृषि प्रधान देश है। उसकी आबादी का ८६ किसान है। इसलिए वर्तमान सरकार सच्चे अर्थों में जनता की प्रतिनिधि है। किसान दल के नेता मनियु कहा करते हैं कि लिंकन के शब्दों में "जनता का शासन, जनता के लिए शासन तथा जनता द्वारा शासन" मेरा ध्येय है।

ब्रिटेनों के मन्त्रिमण्डल में अन्धेर मचा हुआ था। ६५० लाख डालर का कहीं पता ही नहीं लगा। इसी प्रकार ब्रिटेनों ने कई इस प्रकार की सन्धियां की जो रूमानिया के व्यापार और व्यवसाय के लिए घातक थी। वर्तमान सरकार कृषि और खनिज पदार्थों पर विशेष ध्यान देगी। वर्तमान सरकार को यूरोप की शान्ति का रक्षक समझा जाता है क्योंकि यूरोप में बाल्कन प्रायद्वीप से ही बवण्डर उठा करते हैं। रूस और हंगरी के साथ इसकी सीमाएं मिलती हैं — अतः शान्तिरक्षा का भार इस पर है। साथ ही हमें यह भी ध्यान में रखना उचित है कि मनियु की विजय नए खून, नवीन दृष्टि, नवीन भावना तथा नवीन जीवन का सूचक है।

एशिया में स्वतन्त्रता की लहर

एशियाई राज्य सदा से ही इस पराधीनता की अवस्था में नहीं रहे हैं। किसी समय भारत चीन आदि एशियाई राज्यों का प्रभाव यूरोपियन देशों पर था। पर काल की गति विचित्र है। वे देश जो सभ्यता संस्कृति के जन्मदाता थे आज दूसरे देशों द्वारा पदाक्रान्त हो रहे हैं। वह भारत जिसने कि यूरोपियन देशों को पाठ पढ़ाया था आज दैववशात् उन्हीं देशों की पद धूलि अपने माथे पर लगाने में सौभाग्य समझता है। १९वीं शताब्दि के प्रारम्भ में एशिया में शायद कोई भी देश न था जो पूर्णरूप से स्वतन्त्र हो।

१९वीं शताब्दि में ही एक नवीन लहर ने सम्पूर्ण एशिया में एक नवीन जागृति उत्पन्न कर दी। सारे एशियाई देशों ने मिलकर अपना एक संगठन बनाने का विचार किया जो एशियाई देशों के झगड़ों का निपटारा करे तथा यूरोपियन शक्तियों के आक्रमण से बचाने में परस्पर सहायता किया करे। इस समय एशियाई राज्य अपनी निर्बलता को अनुभव करने लगे हैं और उसको दूर करने के लिए एशिया-संघ बना रहे हैं। यूरोपियन देशों ने भारत इजिप्ट चीन आदि राज्यों के प्रति जैसा व्यवहार किया है - उनको अपने अधिकार में रखने के लिए जिन अमानवीय उपायों का अवलम्बन किया - उनको यहां पर उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। अमेरिका इंगलैण्ड आस्ट्रेलिया आदि देशों की सदा से एशिया को अपने हाथ में रखने की इच्छा तथा चेष्टा रही है। और उन देशों की यह शुभ कामना है कि संसार भर से काली जातियों का नामो निशान मिट जाय और श्वेत जातियों का ही संसार भर में प्रभुत्व कायम हो जाय।

संभव है कि कई विश्व शान्ति के उपासक इस 'एशिया-संघ' को विश्व शान्ति के स्थापना में विघ्न बाधक मानते हो। वे समझते हैं कि 'एशिया-संघ' की स्थापना का उद्देश्य यूरोपियन देशों को एशियाई राज्यों में से निकाल कर उनके अपने देशों पर भी अधिकार करना है। पर यह ठीक नहीं है। जिस प्रकार समाज की शान्ति-सुरक्षा तथा उन्नति के लिए व्यक्ति का सुख-शान्ति तथा स्वतंत्रता आवश्यक होती है उसी प्रकार समस्त पृथक् देशों की स्वतंत्रता के बिना विश्व भर की शान्ति का राग अलापना हास्यास्पद है। इसके साथ 'एशियासंघ' का उद्देश्य एशियाई देशों की स्वतंत्रता प्राप्त करना ही है यूरोपियन देशों के साथ युद्ध करना नहीं है। इसका उद्देश्य इनको पराधीन करना नहीं है पर उनको पराधीनता-पाश से मुक्त करना है।

सम्पूर्ण एशिया को एक सूत्र में ग्रथित करने वालों में सबसे प्रथम श्री स्वामी विवेकानन्द जी थे। ~~इनके~~ बाद डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ही इस दिशा में काफी प्रयत्न

उन्होंने अपने एक भाषण में कहा था कि जापान चीन, श्याम वर्मा, भारत संयुक्त सभ्यता की दृष्टि से एक हैं। इस सदी में एशियाई समिति (Pan Asian Society) का निर्माता एक निर्वासित भारतीय ही था। कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय चित्तरंजन दास ने जाहिरा तौर पर 'एशियाई संघ' की आवश्यकता बताते हुए कहा था कि एशियाई देशों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए 'एशिया-संघ' का बनना अत्यावश्यक है। चीनी प्रजातंत्र राज्य के पिता डा. सन यात सेन ने जापान में रह कर चीन की स्वतंत्रता के लिए महान प्रयत्न किया था। जापान की बढ़ती हुई आबादी तथा कच्चे माल की समस्या को सुलझाने के लिए तैयार थे बशर्ते कि वह चीन के साथ की गई असमानता की शर्तों को रद्द कर दे। वे भारत वर्ष की स्वतंत्रता का तहे दिल से अनुमोदन करते थे और कहा करते थे कि जब तक भारत स्वतंत्रता हासिल नहीं कर लेता है तब तक एशियाई देशों की स्वतंत्रता-साधन रहना बहुत कठिन है।

तुर्की राजनीतिज्ञ भी एशियाई देशों की स्वतंत्रता के लिए भारत की स्वतंत्रता अत्यावश्यक मानते थे। Djamal Pasha (जमाल पाशा) जो युद्धसचिव रह चुके थे एक बार कहा था कि "मैं वह दिन देखना चाहता हूं जब कि भारत स्वतंत्र होगा। भारत की स्वतंत्रता के बिना एशिया की अन्य तुर्की देश की स्वतंत्रता की रक्षा भी नहीं हो सकती है और भारतीय स्वतंत्रता के बिना अन्य एशियाई देशों की स्वतंत्रता का कुछ अर्थ नहीं है।"

जापान के जितने भी राजनीतिज्ञ 'मैजी' (Meiji) से लेकर अबतक हुए हैं सभी एशियाई देशों की स्वतंत्रता के पोषक तथा उस स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए सहायता करते रहे हैं। प्रि. ओकाकुरा ने अपनी 'पूर्वीय आदर्श' नाम की पुस्तक में सभी एशियाई स्वतंत्रता का पक्ष पोषण किया है। जापान के देशभक्त तोयामा ने अपना सारा जीवन एशियाई देशों की स्वतंत्रता के लिए अर्पण कर दिया था। और उन्होंने बहुत से जापानी नवयुवकों को इसके लिए उत्साहित किया था.

कहा जाता है कि भारत व चीन दोनों के समान यदि जापान भी एशियाई देशों की स्वतंत्रता का पोषक है तब उसने अंग्रेजों के साथ संधि क्यों की? कोरिया पर अपना अधिकार क्यों किया हुआ है? चीन के विरुद्ध क्यों शस्त्र उठाया? मान्चूरिया को अपने हस्तगत क्यों किया था।

चीनी और भारतीय राजनीतिज्ञ अंग्रेज-जापान संधि के लिए जापान को कोसते हैं पर वे यदि वास्तविक अवस्था को ध्यान में रक्खें तो स्वयं ही जापान की अंग्रेजों के साथ संधि करने के लिए प्रशंसा करेंगे। चीन उस समय बहुत ही निर्बल था और रशिया की सहायता द्वारा अपना काम कर रहा था। कोरिया भी अराजकावस्था में था वहां पर रशिया अपना अधिकार जमाना चाहता था। जर्मनी चीन-जापान-संधि के विरुद्ध आन्दोलन कर रहा था। फ्रांस और रशिया की संधि की ओर रूस की सहायता जर्मनी कर रहा था। इस अवस्था में जापान ने यदि अंग्रेजों से संधि की तो वह उसने दूरदर्शिता का काम ही किया। जापान जानता था कि यदि वह अंग्रेजों से संधि न करता तो उसकी क्या हालत होती. अमेरिका ने इस अंग्रेज-जापान-संधि का समर्थन किया, और इस प्रकार जापान ने रूस के आक्रमण द्वारा कोरिया को बचाया तथा चीन को यूरोपियन शक्तियों द्वारा विभक्त होने से बचाया।

कहा जाता है कि जापान ने कोरिया पर क्यों अधिकार किया हुआ है? वास्तव में यदि केवल Morality ही देखा जाय तो इस बात का समर्थन शायद ही कोई व्यक्ति करे। पर यदि राजनीतिक दृष्टि से सभी जापान के इस कार्य की प्रशंसा ही करेंगे।

उस समय कोरिया तथा चीन में जापान के विरुद्ध आन्दोलन हो रहा था, जापान अपनी उस शोचनीय अवस्था की कल्पना करता था जब कि कोरिया तथा चीन दोनों किसी जापान विरोधी-अन्य यूरोपियन शक्ति को साथ लेकर जापान के विरुद्ध हो जाते। उस समय वास्तव में जापान की बहुत ही शोचनीय अवस्था होती. और वास्तव में ही कोरिया को अपने हाथ में करके जापान ने विदेशीय यूरोपियन शक्तियों के विशेषतया रूस के एशियाई देशों को पराधीन होने से बचा पाई है। यदि कोरिया पर जापान का अधिकार न होता तो अन्य देश उसपर अपना अधिकार कर लेते और उसको विस्तृत कर देते एवं वे प्रशान्त महासागर में अपना अधिकार का पंजा फैला देते। एशिया की दृष्टि से यह हितकर भी न होता।

शान्टुङ्ग पर अपना अधिकार करने के लिए भी जापान को दोषी ठहराया जाता है और कहा जाता है कि जापान ने एशियाई देशों की स्वतंत्रता की रक्षा नहीं की है। वह उसके बन्दरगाह अपने अधिकार में लेना चाहता है। पर यह युक्ति भी ठीक नहीं है।

जापान महायुद्ध में इंगलैण्ड की ओर से लड़ा इसलिए कि वह जर्मनी से शान्टुङ्ग छीन कर अपने अधिकार में करे। जापान की यह सदा से नीति रही है कि वह यूरोपियन शक्तियों को एशिया से भगा कर दूर करे तथा एशियाई देशों की स्वतंत्रता बनाये रखने में सहायता करे। महायुद्ध में जर्मनी की शक्ति को प्रशान्त महासागर से कम किया और चीन में से हटा दिया। जापान के राजनीतिज्ञ यह बात अच्छी तरह जानते थे कि वह शान्टुङ्ग (बन्दरगाह) को जर्मनी से नहीं छीनेगा तो अन्य कोई शक्ति उसे अपने हाथ में कर लेगी और इस प्रकार फिर उसकी वही स्थिति होगी जो पहिले थी। इंगलैण्ड भी उसको वेलिंगटन का रूप देना चाहता था। अब जापान ने चीन को शान्टुङ्ग लौटा दिया है तथा राष्ट्र संघ में सब जातियों के प्रतिनिधि रखवाने पर बल दिया था जिसका पक्ष केवल चीनी प्रतिनिधि ने लिया था. इस प्रकार हमने देखा कि भिन्न २ एशियाई देशों की स्वतंत्रता के लिए जापान ने महान् यत्न किया है और कर रहा है। रूस भी इसी पक्ष का है।

जापान ने कोरिया पर अधिकार किया ताकि अन्य यूरोपियन शक्तियाँ एशिया से पीछे हट जाय तथा चीन के विरुद्ध अंग्रेजों से संधि करने का कारण भी यह था। शान्टुंग पर अधिकार किया जर्मनी को हटाने के लिए। रूस के साथ लेना- चीन पर रूस के अधिकार को कम करने के लिए।

भारत की स्वतंत्रता बिना एशियाई देशों की स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं रह सकती है। भारत के पास अनन्त सैन्य शक्ति है कच्चा माल है पर वह केवल पराधीन है। पराधीनता रूपी शाप ने उसको चारों ओर जकड़ दिये हैं वह स्वच्छन्दता से इधर उधर चल ही नहीं सकता। उसकी के अभिभावक जिधर नकेल मरोड़ देते हैं उसको उधर चल देना पड़ता है। इच्छा हो या न हो। उसकी अपनी इच्छा कुछ भी नहीं है। उसने एक तो गृह युद्ध के द्वारा अपना नाश किया अब दूसरों का नाश करने में मशीन साधन के प्रयुक्त हो रहा है। हमारी यह दृढ़ सम्मति है कि अब भारत को अपने मामलों में स्वयं निर्णायक होना चाहिये। उसकी सेना उसकी अपनी सम्मति बिना कहीं न जानी चाहिए। यदि सच्चाई देखी जाय तो एशियाई देशों की पराधीनता का कारण भारत ही हुआ है। इसके सैन्य से ही इ अन्य देशों पराधीन पाई हैं। अत अब प्रतिकार करके अब उत्तेजित कर देना चाहिए कि भारतीय हित के लिए भारतीय सिपाही हैं।

यूरोपियन देश एशियाई देशों के विरुद्ध संघटित हो गए हैं। वे पहिले अपना देखते है फिर दूसरों का हित देखते हैं। अब एशिया के संघठन का समय आगया है। सारे एशिया को एक होकर यूरोपियन शक्तियों को अपने २ देशों में से निकाल देना चाहिये। और दूसरों की स्वतंत्रता पर हर्ष प्रकट करना चाहिए। यह संघठन एशियाई देशों की स्वतंत्रता के लिए ही होना चाहिए कुछ उपाय जो एशिया-के संघठन के लिए अत्यावश्यक है-निम्न है —

१- एशियाई विश्व विद्यालयों में प्रोफेसरों का परस्पर परिवर्तन।
२- एक देश के विद्यार्थी दूसरे देशों में विचार परिवर्तन के लिए जावें।
३- साहित्य को इस ढंग से बदला जाय- परस्पर कि वैमनस्य फैलाने वाले साहित्य को दूर किया जाय।
४- गृह युद्ध बन्द किए जाय।
५- कोई भी देश अपनी सहायता के लिए यूरोपियन शक्ति को न बुलावें।
६- आर्थिक मामलों में परस्पर सहायता करो।
७- एशियाई देशों को साधन के तौर पर न बर्तने दिया जाय।
८-

वीरमाता

उस समाचार को सुनते ही सारे नगर में उत्तेजना फैल गई। प्रत्येक व्यक्ति उत्तेजित था। सबके चेहरे क्रोध से लाल हो रहे थे। एक वृद्ध ने अपनी म्यान से तलवार खींचते हुए कहा "बादशाह ने अपने मन में समझा क्या है? उसे क्या धन का लोभी समझ लिया है? हम अपनी बहू बेटियां कभी नहीं बेच सकते।" एक दूसरे वृद्ध ने अपनी तलवार चारों ओर घुमाते हुए कहा - "और बादशाह भी तो कहता है कि यदि सीधी प्रकार बात न मानोगे तो बल प्रयोग करना पड़ेगा. समझता क्या है? इसी तलवार से बोटी २ काट कर फेंका हुआ। वह बल प्रयोग करने से बाज आया है? भला मुर्गी खाने वालों में भी कहीं ताकत आई है?"

"आखिर बात क्या है?" एक आगन्तुक ने पूछा।

वृद्ध ने उत्तर दिया - "अरे तुम्हें मालूम नहीं? अकबर ने महाराणा के पास पैगाम भेजा था कि अपनी बहू को हमारे पास लाकर उपस्थित करो, हम उसे पटरानी बनायेंगे और तुम्हें अपना कृपापात्र। यदि हुक्म को बजा लाने में देरी करोगे तो शाही फौज आकर देश को तहस नहस कर डालेगी और कलावती को बलात् ले जाय-गी। महाराणा ने उनकी बात न मानी थी। इस लिए बादशाह ने इस समय सेना सहित चित्तौड़ को घेर लिया है।"

युवक की आंखें लाल हो गईं। उसने उत्तेजित हो म्यान से तलवार निकाल ली और पैंतरा बदलते हुए बोला "हमारे रहते किस की शक्ति हिम्मत है जो कि महाराणा की भूमि में कदम रख सके। खून की नदियां बह जायेंगी। बादशाह अपने मन में समझता क्या है? अपनी बादशाहत अपने घर में चलाये। यहां उसकी एक न चलेगी। यह महाराणा का राज्य है।"

वृद्ध ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा "शाबास बेटा! जब तक तुम्हारे जैसे सुपुत्र चित्तौड़ में हैं तब तक किस की हिम्मत है कि वह इधर आंख उठावे।"

बड़ी देर तक इस बात की चर्चा होती

रही। धीरे-धीरे सब अपने घर चले गए। युवक ने भी तेजी से अपने घर की राह ली।

"माँ! कुछ सुना तुमने?" युवक ने अपने घर में प्रवेश करते हुए कहा।

युवक की वृद्धा माता बैठी हुई रोटी पका रही थी। पुत्र की आवाज सुन कर चौंक पड़ी। आंख ऊपर उठाई तो देखा कि उसके पुत्र का मुख क्रोध से लाल हो रहा है, और आंखों से चिनगारियां निकल रही हैं। वृद्धा सहम गई और बोली "क्यों बेटा क्या हुआ? तुम्हारा मुख क्रोध से क्यों लाल हो गया है? क्या किसी ने तुम से कुछ कहा है? तलवार पर क्यों हाथ रक्खा हुआ है?"

"मां!" युवक ने क्रोधपूर्ण शब्दों में कहा। "अकबर ने इस तरफ आंख उठाई है? अपने मन में सोचता क्या है? ऐसा क्या होगा कि अम्बर-नरेश की तरह महाराणा को भी वश में कर लूंगा।"

"आखिर अकबर कहता क्या है?"

"उसने और क्या कहना मां? उसने महाराणा की वीरता को भांप था। उन्हों ने इस भीख को तिरस्कारपूर्ण स्पष्ट शब्दों में अस्वीकृत कर दिया है। इस कारण बादशाह ने अपना दल बल लेकर चित्तौड़ को घेर लिया है। सोचता होगा कि महाराणा शायद इतना दलबल देख कर डर जायगे और अधीनता स्वीकार कर लेंगे। पर मां! हमारे जीते जी क्या यह कभी हो सकता है? महाराणा की कृपा है, फिर कब काम आयेंगे?"

वृद्धा माता ने आश्चर्यपूर्ण क्रोध से कहा "बेटा! उसकी इतनी हिम्मत हो गई? अब इस ओर उसकी उद्दण्डतापूर्ण दृष्टि पड़ी है। यह कभी नहीं हो सकता? यहां उसकी दाल न गलेगी। जाओ बेटा! जाकर अपने देश के लिए युद्ध करो। देश को अपनी लज्जा बचाने के लिए तुम्हारे जैसे नवयुवकों की आवश्यकता है। यदि अब भी देश के काम न आओगे तो फिर बेटा! फिर किसके लिए तुम्हें मैंने जन्मा है? जाओ! बेटा जाओ!! बादशाह को अपनी सीमा के अन्दर कदम भी मत रखने देना। तुम ने राजपूतनी का दूध पिया है। केवल मेरे दूध की लाज बचाना, समरभूमि में पीठ मत दिखाना।"

वीर युवक ने माता के चरणों में सिर

झुकाया। माता ने उसके सिर पर हाथ फेर कर उसे आशीर्वाद दिया।

मा! प्यास लगी है, पानी पिला ओ!

बुढ़िया चौंक पड़ी। उसने ऊपर सिर उठाया तो देखा कि उसका पुत्र सामने खड़ा है। सारा शरीर मिट्टी से लथपथ है तथा जगह २ से खून निकल रहा है। माता ने आकर प्यार से पुत्र को बैठाया — और पैर धोने के लिए पानी देते हुए पूछा लड़ाई में क्या हुआ बेटा?

हमारी बड़ी दुर्दशा होगई मा। शाही फौज बहुत बड़ी थी। हमारे सैनिकों के पैर उखड़ गए। महाराणा बड़ी कठिनता से सेना को सम्भाल रहे है। युद्ध तो घमासान हो रहा है, पर विजय की बिल्कुल आशा नही है।

"और तुम क्यों आगए बेटा? माता ने आश्चर्य से पूछा।

मा! मैं बुरी तरह घायल होगया था। युद्ध करने की मेरे में बिल्कुल भी सामर्थ्य न थी। व्यर्थ में जान गवाना उचित न समझ मैं लौट आया। स्वस्थ होकर फिर लौट जाऊंगा।

'फिर कब लौट जाओगे?" माता ने क्रोध पूर्ण स्वर में पूछा।

युवक चौंक पड़ा और सिर उठा कर देखा तो माता का क्रोधपूर्ण चेहरा देख सहम गया। सिर झुका लिया और चुपचाप बैठा रहा।

माता ने क्रोध से गरजते हुए कहा — फिर कब जाओगे? जब देश दुश्मन के हाथ में हो जायगा। महाराणा की गद्दी छिन जायगी, बता तो तब जाकर क्या करोगे? अरे! तेरे पितृकुल के बुड्ढे तो अपने देश के लिए लड़ रहे हैं और तू यहां घर में अपना मुंह छिपा कर बैठा हुआ है। तैने मेरे दूध बदनाम कर दिया। तू तो शेर की मांद में रहने वाला गीदड़ निकला। क्या राजपूतनी ने गीदड़ को जन्म दिया था जो इस प्रकार डर कर भाग आया। तूने मेरी कोख से क्यों जन्म लिया था? क्या अच्छा होता यदि तू उत्पन्न होते ही मर जाता? फिर यह दिन आज भी देखना न पड़ता। जा! यहां से निकल मेरे घर से। मेरे घर में तेरे जैसों के लिए स्थान नहीं है। मैं तेरा मुंह देखना नहीं चाहती।

बुढ़िया माता और अधिक न कह सकी।

उसका गला भर आया। आँखों में आँसू आ गए। युवक पर इन शब्दों का बहुत अधिक असर पड़ा। वह रोता हुआ माता के पैरों पर गिर पड़ा और बोला माँ! मुझे माफ करो। अब मैं जाता हूँ। पर हमारी विजय हुई तभी अपना मुँह तुम्हें दिखाऊँगा। यह कह कर वह तेजी से घर से बाहिर हो गया। वृद्धा चुपचाप खड़ी देखती रही।

उपर्युक्त घटना को बीते यद्यपि दिन हो गए। शाम का समय था। युवक की माता अपने घर के दरवाजे पर बैठी हुई सामने की ओर देख रही थी। वह कुछ चिन्तित सी मालूम पड़ती थी। युद्ध का अभी तक कुछ भी परिणाम न निकला था। उसका पुत्र न तो अब तक युद्ध से लौटा था और न ही अब तक उसके कुछ समाचार मिले थे। वह सोच रही थी कि कहीं मेरा पुत्र युद्ध में ही तो नहीं मारा गया? बिचारे को मैंने बहुत कठोर शब्द कहे थे। उनका उस पर अवश्य गहरा असर हुआ होगा। चलते समय उसके मुँह पर कुछ विशेष प्रकार की निराशा सी झलक दिखाई देती थी। अवश्य ही उसने युद्ध में प्राण दे दिए होंगे। मुझे कदापि भी ऐसे कठोर शब्द न कहने चाहिए थे। पर नहीं:------------। सहसा उसके विचार भंग हो गए। उसने सामने से कुछ सिपाहियों को आते देखा। उसका हृदय जोर से धड़कने लगा। उसकी बाईं आँख ने फड़क कर किसी अनिष्ट की सूचना दी। वह उठ कर खड़ी हो गई। सिपाही थोड़ी देर में उसके पास पहुँच गए और कन्धे पर से अर्थी उतार वृद्धा के सामने रख दी। वृद्धा ने देखा कि उसके पुत्र का शव है। उसका हृदय धक् से रह गया और वह निर्वाक् खड़ी रही।

"माता!" एक सिपाही ने आगे बढ़ कर कहा "यह तुम्हारा पुत्र है। युद्ध में इसी के कारण आज हमारी विजय हुई है। इसी ने महाराज के संग्राम में प्राण बचाए हैं। महाराज का बचना बड़ा कठिन था। वे बुरी तरह से शत्रुओं के बीच में फँस गए थे। इसने वहाँ पहुँच कर उनको तो बाहिर पहुँचा दिया पर स्वयं घिर गया और लड़ता २ मारा गया।" वृद्धा माता को अब कुछ ज्ञान हुआ

अपने पुत्र की वीरता सुन उसकी छाती गर्व से फूल उठी। उसने पुत्र के पास बैठकर कहा, "बेटा! आज तुमने सच्चे राजपूतों का काम किया है। आज तुम्हें जन्म देना सार्थक हुआ। तुमने मेरे दूध की लाज बचा ली। वीर सैनिको! यह रण से भाग आया था। उस समय मैं इस पर बहुत क्रुद्ध हुई थी। इसने पीने को पानी माँगा था। मैंने इसको पीने तक के लिए पानी न दिया था। बिचारा उल्टे पाँव लौट गया था। लौटते हुए कह गया था कि माँ! अब युद्ध में विजय प्राप्त की तभी तुम्हें अपना मुँह दिखाऊँगा। अन्यथा कभी भी नहीं। अपनी क्षत-विक्षत देह को ले तुम्हारे सामने आऊँगा।" "बेटा! तुमने अपनी वह प्रतिज्ञा पूरी कर डाली किन्तु मर कर।" इतना कहते २ माता के पुत्र वात्सल्य ने ज़ोर पकड़ा। उसने झुक कर अपने पुत्र का ललाट चूम लिया और आँखों से अश्रुओं की दो तीन बूँदें टपका दीं।

सैनिकों की भी आँखें भर आईं। उन्हों ने रोते २ कहा— "माता! तुम धन्य हो। देश को तुम्हारी जैसी माता की ही आवश्यकता है। राजस्थान को वीर-प्रसू होने का गर्व तुम्हारे जैसी स्त्रियों पर ही है।"

इतना कह कर सैनिक चले गए। वृद्धा को उनके जाने तक का भी ज्ञान न हुआ। वह अपने पुत्र के ललाट को बार बार चूमती और उस पर आह्लाद स्रोत से भीगे अश्रुओं को डालती रही। वीरमाताएं ऐसा ही किया करती हैं।

लेखक:— श्री रणवीर

ट्रेड डिस्प्यूट बिल के शिकार



भारतीय मजदूर

युद्धों के लाभ

वर्तमान काल में कुछ शान्तिप्रिय लोगों ने युद्ध के विरुद्ध जिहाद कर दिया है—विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया है। वे लोग युद्ध की भयंकरता का चित्र खींच कर सर्वसाधारण को इसके विरुद्ध भड़काते हैं। कहा जाता है कि युद्ध से हज़ारों निरपराध 'अमरपुत्रों' का घात किया जाता है, भाई बान्धव बिछुड़ जाते हैं; यातायात के साधन अव्यवस्थित हो जाते हैं; विनिमय और उत्पत्ति का संगठन ढीला पड़ जाता है, सिक्कों की कीमत गिर जाती है, आर्थिक अवस्था बिगड़ जाती है, मानवीय क्रियाशीलता शिथिल पड़ जाती है, वस्तुएं के दाम बढ़ जाते हैं। लार्ड रसल के शब्दों में कहा जाता है कि "अनिद्र, अविश्रान्त और क्रान्तिकारी विज्ञान दिन प्रतिदिन विनाश के साधनों का विकास कर रहा है और इस बात का निश्चय दिला रहा है कि भविष्य में युद्ध उन हथियारों से लड़ा जाय जिनकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की गई। युद्ध का क्षेत्र समुद्र और आकाश होगा। इस युद्ध में १९१४-१८ के समुद्री और आकाशी युद्धों की बड़ी हंसी होगी क्योंकि आजकल के बमगोलों के सामने बारूद इत्यादि फेंके जाने वाले पदार्थों की हो सकती है। इसलिए यह असम्भव नहीं कि भावी युद्ध सारे संसार को अन्धकार में डाल दे। शान्तिप्रिय लोग चेतावनी देते हैं कि यदि मनुष्यजाति ने जीना है और उन भावनाओं और विचारों को कार्यरूप में परिणत करना है—जिनके लिए मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है—तो यह आवश्यक है कि युद्ध सरीखे खूनी उपायों को तिलाञ्जलि दे दी जाय।

दूसरा पक्ष युद्धों को लाभदायक बताता है। उनकी सम्मति में युद्ध ही सब अच्छाइयों का मूलस्रोत है। दुनिया की उन्नति का मूलमन्त्र "सैनिकवाद" है। जर्मन दार्शनिकों—निट्शे, ट्रीट्स्के प्रभृति—ने इस पक्ष का प्रबलता के साथ समर्थन किया है। दोनों पक्षों में सत्यता का अंश है—युद्धों की विकरालता का प्रदर्शन कराते हुए उसके लाभों की उपेक्षा नहीं की जा सकती और न ही उसके लाभों

का दिग्दर्शन करते समय हानियों की उपेक्षा की जा सकती है। दोनों पक्षों में यथार्थता है। इस समय दुनिया की प्रवृत्ति युद्ध का विरोध कर रही है, विद्रोह करती है—ऐसे समय युद्ध द्वारा हुए लाभों का प्रदर्शन कराना अनुचित न होगा—मनुष्यजाति कृतघ्न रहेगी यदि वह अपने उपकर्त्ता के उपकारों विस्मृति के अनन्त गर्त में विलीन कर देगी। मनुष्यजाति को कृतज्ञ बनाने के उद्देश्य से हम युद्धों के कुछ लाभों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

(१) युद्ध सभ्यता में बिजली का असर करता है—उसमें ताजगी और संजीवनी डाल देता है। सम्पूर्ण संसार का प्राचीन इतिहास इस सत्य का प्रतिपादन करता है। जब कभी कोई जाति एक स्थान पर बस जाती है तब वह "आगार-सभ्यता" को जन्म देती है, वह बड़े बड़े नगर, विशाल भवन बनाती है, विद्या और विज्ञान की उन्नति करती है। पर वह जाति आलसी होने पर अपने स्वाभाविक गुणों को छोड़ देती है, उसमें ऐश और आराम करने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है—सम्पूर्ण जाति में घुन लग जाता है। यदि उस समय किसी शक्तिशाली जाति का उसके साथ संसर्ग न हुआ तो वह सभ्यता—जिसको मानवसमाज ने कई सदियों में विकसित किया था—अनन्त के गर्त में विलीन हो जाती है। सभ्यता की रक्षा तथा स्फूर्ति के लिए आवश्यक है कि किसी बलवान् जाति के साथ उसका संसर्ग हो। इस कमी को विजेता जातियां पूरी करती हैं। उनमें अपने स्वाभाविक गुण होते हैं। वे आती हैं और गन्दमाल को दूर कर अपना प्रभुत्व जमा लेती हैं। वे तोड़ देते हैं मार्ग—जिसने उसे रुका जाता था—दूर कर देती हैं और चमचमाता सोता निकलता है। उनका काम पानी की पर जमी काई को दूर करना होता है—जिसने उसे गन्दा किया हुआ था। वे उस जाति को मारती हैं जिसने स्वयं विकसित अथवा दूसरों से धरोहर में ली हुई सभ्यता को कमजोर कर दिया है। जब वह सभ्यता नए हाथों में चली जाती है—उसमें एक विशेष ताकत आ जाती है। नवीन जाति के गुण करामात दिखाते हैं। भारत में पहले पहल यदि कोई ब्राह्मण धर्म को पुनरुज्जीवित करने वाले थे तो वे थे कुषाण और शक। जो जाति प्रतिभा को कहीं रखा कर भार डाल कर निश्चिन्त बैठ जाती है—उसका मर जाना अच्छा है। सांसारिक संघर्ष में जो खड़े नहीं रह सकते, उनका सदा के लिए उठ जाना मनुष्य समाज तथा सार्वभौम सभ्यता के लिए परमावश्यक है—नहीं तो वे ही लोग सभ्यता की जड़ में घुन का काम करते हैं।

(२) दो जातियों के समागम से उन्नत प्रकार की सभ्यता और मनुष्य समाज का प्रादुर्भाव होता है। प्राचीन समय में केवल मात्र युद्ध ही इस सम्मिश्रण का कारण हो सकता था। एक जाति दूसरी पर आक्रमण करती है - उसके पुरुषों को मार देती है पर स्त्रियों को नहीं। स्त्रियां उसकी लूट होती हैं। उनके साथ वे लोग सन्तानोत्पत्ति करते हैं - इसका परिणाम यह होता है कि एक उन्नत प्रकार का मनुष्य समाज बनता है। भारत तो वर्णसंकर से डरता था - पर हमारी सम्मति में तो मनुष्य समाज की वर्तमान प्रगति का बहुत सा श्रेय इसी वर्णसंकरता को है - क्योंकि इससे अनेक प्रकार के तत्वों का सम्मिश्रण हो जाता है। इसी बात को ध्यान में रखकर वेदों में - समयमी स्रह - और स्मृतियों में कहा गया है कि विवाह सम्बन्ध असगोत्र और असपिण्ड हों - "असपिण्डा च या मातुः असगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥" इसी लिए स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि विवाह सम्बन्ध दूर प्रदेशों में होने चाहिएं - दूरे हिता = दुहिता। प्राणीशास्त्र वेत्ताओं का कहना है कि यदि सन्तानोत्पत्ति में विभिन्न तत्व नहीं मिलेंगे - तो कुछ ही पीढ़ियों में मनुष्य-समाज का अन्त हो जायगा। हमें युद्ध को धन्यवाद देना चाहिए कि उसकी कृपा से विजातीय तत्वों का सम्मिश्रण होते रहने के कारण मनुष्यसमाज अब तक न केवल बचा हुआ है - पर दिन दूना रात चौगुना उन्नति के शिखर पर चढ़ रहा है।

(३) प्राचीन समय में विद्या, विज्ञान, विचार, विश्वास आदि का प्रवर्तक एवं प्रचारक युद्ध रहा है। उस समय रेल, तार, डाक आदि यातायात तथा बातचीत करने के साधन विद्यमान नहीं थे। एक देश से दूसरे देश में आना असम्भव नहीं कठिन अवश्य था - ऐसे समय युद्ध ही विद्या और कला को एक स्थान से दूसरे स्थान पर आरोपित करते। यदि महत्वाकांक्षी चंगेज़खां और उसके मंगोलियन सैनिक लूटमार करते हुए यूरोप न पहुंच जाते तो यूरोप को बारूद और छापेखाने का ज्ञान न होता और न ही यूरोप की शासनव्यवस्था में परिवर्तन आता - सामन्तपद्धति का अन्त न होता और न ही विद्या की पुनर्जागृति होती। यदि तुर्क लोग कौन्स्टेन्टीनोपल को तहस नहस न कर देते तो यूरोप अन्धकार में ही पड़ा रहता। यदि धार्मिक युद्ध न होते तो अरबों की कला, भवन निर्माण विद्या और विज्ञान से यूरोप वंचित रह जाता - धार्मिक अन्धविश्वासों का लोप न होता और न ही इतनी जल्दी आव

सामाजिक उन्नति होती। यदि अरब लोग इस्लाम का विश्व भ्रातृत्व से रणा झण्डा लेकर यूरोप को आक्रान्त न करते तो दास प्रथा का अन्त न होता। इस प्रकार स्पष्ट है कि यूरोप युद्धों का बहुत अधिक ऋणी है — युद्धों से ही एक देश का विज्ञान और कला दूसरे देशों में फैल सकती थी।

(६) कहते हैं कि आवश्यकता आविष्कारों की जननी है। युद्ध में यह सत्य बहुत अधिक स्पष्ट होता है। रोगियों का इलाज करने के लिए, लाखों को दम भर में मार देने के लिए अनेक उपाय किए गए — अनेक औषधियाँ निकाली गईं। इसी प्रकार युद्धकर से रसायनिकली गई। इन आविष्कारों से पूर्व भी मनुष्य की बुद्धि कार्य कर रही थी — पर महती आवश्यकता के पड़ने पर सारा दिमाग एक ओर केन्द्रित हो गया — जिसका परिणाम आविष्कारों का सातत्य है।

(५) जिस समय मनुष्य शान्ति से जीवन व्यतीत करते हैं — उस समय वे आलसी हो जाते हैं, ऐश और आराम को पसन्द करते हैं, राष्ट्रीय सिपाही बनना अपमान कर समझते हैं। अपनी तृष्णाओं की पूर्ति के लिए लाखों रुपए बरबाद कर देते हैं। वह मनुष्य समाज पतित हो जाता है। गिब्बन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "रोमन साम्राज्य का पतन" में इसका विस्तार से प्रतिपादन किया है। पर जिस समय युद्ध होते हैं उनके जीवन सादे रहते हैं। रोमन सैनिक इस बात के उदाहरण हैं — पहले वे लोग दिन भर खेतों में काम करते, राष्ट्र की पुकार पर सेना में भर्ती होते, यदि शत्रु उन्हें उपहार भी दे, उसे ठुकरा देते, 'सर्वाधिकारी' बन कर भी युद्ध विजय कर के भी वे उस महान पद को निःस्वार्थ भाव से छोड़ देते — यह था उनका सादा जीवन और उच्च विचार। शान्ति के समय उनकी क्या हालत थी इसे तो गिब्बन का पन्ना पन्ना बताता है।

(६) जिस समय शान्ति होती है, उस समय विजेता जाति विजित जाति पर अत्याचार करती है — उसे किसी का डर नहीं होता इस लिए मन माना करती है। रोमन गवर्नर किस प्रकार अपने प्रान्तों से कर वसूल करते, वहाँ पर अत्याचार करते, सब तरफ से चूसते — इसका ज्ञान प्रत्येक इतिहासप्रेमी को है। इसी प्रकार ब्रिटिश भी शान्ति के समय जलियानवाला बाग, काला कानून और रौलट बिल, आर्डिनेंस को जारी करते हैं और युद्ध के समय स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व की घोषणा करते हैं। युद्ध विजित जातियों को स्वतन्त्र करता है और दासों को मुक्त करता है॥

मन्त्रि - परिषत्

वर्तमान काल की बड़ी भारी देन मन्त्रिमण्डल का शासन है। इंग्लैण्ड इस का प्रवर्तक है। इंग्लिश जाति की यह बड़ी भारी विशेषता है कि वह एकदम परिवर्तन नहीं करती - वह विकासवादी है। स्वयं परिस्थितियां उससे काम कराती हैं। वर्तमान इंग्लिश शासन विधान कभी एक सभा का रीतिबद्ध नहीं किया गया - वह समय की उपज है। परिस्थितियों के अनुसार लिखित और अलिखित शासन विधान बनता गया। ब्रिटिश शासन विधान के लचकीलेपन को बताते हुए मेरियट लिखता है कि यदि कोई ब्रिटिश शासन विधान सम्बन्धी पुस्तक लिख कर प्रेस में दे दी जाय, तो वह छप चुकने पर ही पुरानी हो जायगी। ठीक इसी प्रकार मन्त्रिमण्डल का निर्माण भी एक दिन में नहीं होगया - वह भी धीरे २ विकसित हुआ है। हैनोवर वंश के समय से इस संस्था का विकास प्रारम्भ होता है। ये लोग जर्मन थे। इन्हें इंग्लिश न आती थी। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में उपस्थित होना इन्हें नागवार जंचा। ये लोग इंग्लिश राजनीति में आनन्द अनुभव नहीं करते। प्रथम और द्वितीय जोर्ज के समय इसका

विकास हुआ। वालपूल और उसके व्हिग साथियों ने इसके विकास में मदद दी। पर जौर्ज III के समय आपत्ति के बादल मण्डराने लगे। वह केवल नाम-मात्र का ही राजा नहीं बनना चाहता था, पर वास्तविक शासन का स्वप्न लेता था। वह "राजाओं के वास्तविक अधिकार" की घोषणा करता था। उसने घूस आदि से पार्लियामेण्ट को अपने वश में किया। पर उसकी नीति के परिणाम स्वरूप अमेरिकन उपनिवेशों के [illegible] जाने पर उसकी शक्ति जाती रही। फिर [illegible] मन्त्री बना और उसने फिर राजकीय दखल को दूर कर मन्त्रिमण्डल के शासन का प्रयत्न किया। धीरे २ राजा लोग अपने अधिकार छोड़ते गए, और मन्त्रिमण्डल तथा प्रधानमन्त्री की आज्ञानुसार शासन करने लगे। वर्तमान समय में प्रधान मन्त्री ही सर्वेसर्वा है - राजा "अपने स्वामी की ध्वनि" को प्रतिध्वनित करता है - वह मिट्टी का पुतला है।

कैबिनेट सिस्टम के विकास का परिणाम पार्लियामेण्टरी शासन हुआ। इसमें कई विशेषताएं हैं। व्यवस्थापक विभाग को शासक विभाग पर निरीक्षण और कन्ट्रोल करने का अधिकार मिला। मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापकों के प्रति जिम्मेवार हुआ। सब मन्त्रियों का सामूहिक उत्तरदायित्व माना गया। अत किसी मन्त्री पर अविश्वास का प्रस्ताव सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल पर अविश्वास समझा जाने लगा।

अविश्वास-प्रस्ताव के पास होने पर मन्त्रिमण्डल को पदत्याग करना पड़ता है।

इसलिये आवश्यक था कि मन्त्रिमण्डल की एक नीति हो। वे लोग प्रधान बैठकों में नीति निर्धारित करते हैं। मन्त्रियों में भेद होना स्वाभाविक है - परन्तु वे समझौता कर अपना कार्य करते हैं। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में कितनी ही फैसला क्यों न करें - पर पार्लियामेंट अथवा जनता के सामने एक ही मार्ग का अनुसरण करते हैं। यदि कोई मन्त्री किसी प्रकार भी प्रधान मन्त्री की नीति को नहीं मानता - तो उसे पदत्याग करना पड़ता है।

(४) मन्त्रिमण्डल का प्रधान भी होता है - इसे प्रधान मन्त्री कहते हैं। यह ही मन्त्रियों के पारस्परिक विरोधों को दूर करता है और मन्त्रिमण्डल का संचालन करता है। पहले प्रधान मन्त्री नहीं होते थे सब राजा के समान नौकर थे, पर वालपोल के समय से इसका विकास हुआ। यद्यपि ब्रिटिश कानून और शासन विभाग में कहीं भी "प्रधान मन्त्री" शब्द नहीं आता - पर १९०६ की राजकीय घोषणा में इसे स्वीकार कर लिया गया है। अब भी "प्रधानमन्त्री" पद का कोई वेतन नहीं है। वह

सामान्यतया प्रधान कोषाध्यक्ष भी होता है - उसी का वेतन उसे मिलता है। राम्जे मैकडोनल्ड प्रधान मन्त्री के साथ २ परराष्ट्र सचिव भी थे - उसी का वेतन लेते थे। पार्लिमेन्ट में जिस या जिन दलों का बहुमत होता है - उस या उन में से ही कोई व्यक्ति प्रधान मन्त्री बनता है। बादशाह एक व्यक्ति को - जिस का बहुमत हो - प्रधानमन्त्री नामजद करता है। यदि वह स्वीकार कर ले, तो हस्तचुम्बन रस्म्र, प्रधान मन्त्री घोषित किया जाता है। प्रधानमन्त्री ही अन्यमन्त्रियों को नामजद करता है। जब मन्त्रिमण्डल बन गया - तब उस का संचालन उसे ही करना पड़ता है। प्रत्येक मुख्य विभाग के साथ वह सम्बन्ध रखता है। जब कभी कोई मन्त्री नई नीति का आश्रय लेता है - उस से पहले उसे प्रधानमन्त्री से सलाह लेनी पड़ती है। यदि तो स्वीकार हो जाय, तब तो काम ठीक है - यदि न बना तो उसे समझा बुझा दिया जाता है। यदि न माने, तो मन्त्रिमण्डल में इस पर विचार होता है - यदि तब भी वह अपनी नीति पर दृढ़ रहे - तो उसे इस्तीफा देना पड़ता है।

मन्त्रिमण्डल को दृढ़ रखने तथा प्रधानमन्त्री के शासन को बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि देश की पार्लिमेण्ट में केवल दो दल हों। जिस दल का बहुमत हो उसी का मन्त्रिमण्डल। जब एक भावना, एक विचार, एक विश्वास और एक अनुभूति से मन्त्रिमण्डल संगठित होगा -

तभी सुचारु रूप से कार्य चल सकेगा। तभी सरकार ठोस होगी। यदि विभिन्न विचारों, विश्वासों और भावनाओं वाले दलों से मन्त्रिमण्डल बनेगा, तब वह कभी दृढ़ नहीं रह सकता। उस में बहुत अधिक समझौते करने पड़ेंगे - फिर भी निश्चित नहीं कि विभिन्न ग्रुप कैबिनेट का साथ दें। विभिन्न ग्रुप अपने नेता में केन्द्रित रहते हैं - प्रधानमन्त्री में नहीं। इसलिये उसकी शक्ति क्षीण हो जायगी।

इंग्लैण्ड कैबिनेट सिस्टम का जन्मदाता है। इसमें हमेशा से दो दल रहे हैं। विभिन्न ग्रुपों को उगाने के लिये यहां का वायुमण्डल उपयुक्त नहीं। पार्लियामेन्ट का बहुमत - मन्त्रिमण्डल, पर वास्तव में प्रधानमन्त्री ही देश का संचालन करता है। पर यह आवश्यक नहीं कि जिस पद्धति ने इंग्लैण्ड को अपने औ कानून दिये वह दूसरे जलवायु में भी फले फूले। दूसरे जलवायु में जब इस पौदे का वपन किया गया - तब वह मुरझा गया। फ्रान्स और इटली इसके उदाहरण हैं। राजाओं की स्वेच्छाचारिता और नौकरशाही से ऊब कर फ्रान्स ने क्रान्ति करके प्रजातन्त्र को अपनाया। इंग्लिश शासन विधान का संचालन किया। शासक विभाग को व्यवस्थापक विभाग के आधीन किया पर वह पौदा वहां मुरझा गया।

यद्यपि फ्रान्स के शासनविधान में वे सब मूलतत्व – मन्त्रिमण्डल की एक नीति, सामूहिक उत्तरदायित्व, राष्ट्रपति का प्रधानमन्त्री को नामज़द करना आदि – विद्यमान हैं, पर उस में वह स्पिरिट नहीं जो ब्रिटिश शासनविधान में है। ब्रिटेन की जनता स्पष्टतया दो विचारों में विभक्त है – उधर फ्रान्स में छोटे २ ग्रुप हैं। किसी भी दल का कभी पार्लिमेण्ट में प्रभुत्व नहीं होता। अतः सदा विभिन्न दलों की सम्मिलित कैबिनेट बनानी पड़ती है। भिन्न विचारों और उद्देश्यों वाले ग्रुप कभी संगठित संस्था का निर्माण नहीं कर सकते। संगठन होने पर उद्देश्यों का टकरा होने पर वह टूट जाती है। फ्रान्स का मन्त्रिमण्डल एक पुलिन्दा है संगठित संस्था नहीं। इसका परिणाम यह हो जाता है कि ग्रुपों के नेताओं की महत्ता बढ़ जाती है। प्रधानमन्त्री शक्तिहीन हो जाता है। प्रतिनिधि अवसर से लाभ उठाते हैं और अपने स्वार्थ साधते हैं।

फैसिस्ट शासन से पूर्व इटली में फ्रान्स से भी अधिक दुर्दशा थी। छोटे २ ग्रुप बने हुए थे। प्रत्येक प्रतिनिधि अपना उल्लू सीधा करने में लगा हुआ था। कोई भी मन्त्रिमण्डल स्थिर न रह सकता था। ग्रुप अधिक से अधिक कीमत वसूल करते। सम्पूर्ण शासन अव्यवस्थित और निकम्मा हो रहा था। शासक विभाग शक्तिहीन था; जो शक्ति और तेज चाहिये थी वह उस के पास न थी। इस भयंकर अवस्था का परिणाम यह हुआ